

संरक्षक सह सलाहकार



सेठ राम निवास गुप्ता



श्रीमती कविता मल्होत्रा

प्रधान संपादक - कैलाश आदमी

# निर्दलीय

अंतरराष्ट्रीय मासिक पत्रिका

- साहित्य
- कला
- संस्कृति
- उद्यमिता

उप संपादक: सरिता गर्ग 'सरि'

प्रवासी संपादक: डॉ. सुनीता शर्मा

वर्ष: २१

अंक: ४

नई दिल्ली, अक्टूबर २०२६

मूल्य: १०/-

विशेषांक: ५०/-

## दिमागी नक्सली कौन?

संदर्भ: प्रधानमंत्री मोदी का कथन

‘दिमागी नक्सली’ कहकर नित्य कर रहे बदनाम,  
उल-प्रपंच की राजनीति को कब लगेगा विराम ?

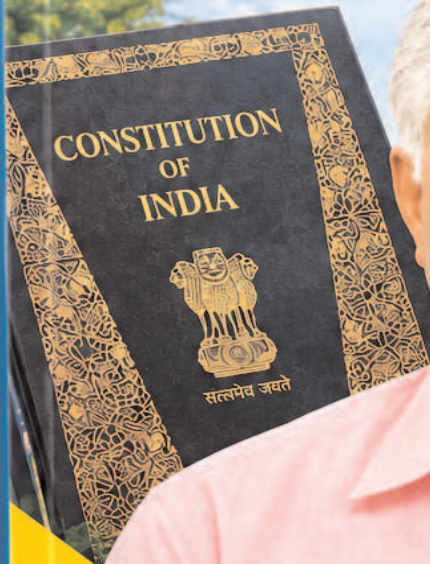
(आमुख) पृष्ठ ४-६



इस पुस्तक का डिजिटल व प्रचलित संस्कारण शीघ्र आपके हाथों में होगा...

# आज का विचार

(कैलाश आदमी के अग्रलेखों का संग्रह)



## ३६५ जीवन सूत्र



निर्दलीय प्रकाशन भोपाल/नई दिल्ली

आज का विचार

(कैलाश आदमी के अग्रलेखों का संग्रह)

३६५ जीवन सूत्र

निर्दलीय/अक्टूबर २०२६

| स्तंभ | शीर्षक                       | लेखक/ कवि/समीक्षक            | पृष्ठ |
|-------|------------------------------|------------------------------|-------|
| आमुख  | दिमागी नक्सली कौन?           | कैलाश आदमी                   | ४-६   |
| आलेख  | नेपाल में अभिव्यक्ति         | प्रो. विनोद कुमार विश्वकर्मा | ७-९   |
| ---   | विरोध के उठते स्वर           | दाऊ पटेल                     | १०    |
| ---   | विचारों का विरोध             | विशाल श्रीवास्तव             | ११    |
| ---   | विवेचना का विषय              | चंचलिका शर्मा                | १२    |
| ---   | अराजकता का नया दौर           | शुभा वर्मा                   | १२    |
| ---   | चुनौती विचार की              | वीरेंद्र बहादुर सिंह         | १३    |
| ---   | नई पहेली-दिमागी नक्सल        | सतीशचंद्र सतीश               | १४-१५ |
| ---   | नया वर्ग तैयार               | डॉ. सीमा अग्रवाल             | १६    |
| ---   | नई समस्या: दिमागी नक्सल      | शशि प्रभा शाक्य 'शशि'        | १७    |
| ---   | विफलताओं पर पर्दा            | मनोज चतुर्वेदी 'आनंद'        | १८-२१ |
| ---   | विवादास्पद आक्षेप            | शीला श्रीवास्तव              | २२-२३ |
| कविता | हे कॉकरोच तुम महान हो        | रीतेश कुमार दुबे             | २३    |
| आलेख  | अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता     | वल्लभ किशोरी शर्मा           | २४    |
| ---   | दुष्ट मानसिकता का द्योतक     | शशिकांत गुप्ते               | २५-२६ |
| ---   | मानसिक अवधारणा है            | दीप्ति मेहता                 | २७-२८ |
| ---   | विवाद का विषय है...          | सूफिया जैदी                  | २९    |
| ---   | बंदूक से ज्यादा खतरनाक       | रति चौबे                     | ३०    |
| ---   | नई पीढ़ी: नया सोच, नई दृष्टि | डॉ. सुनीता शर्मा             | ३१-३२ |

## अंतर्राष्ट्रीय मासिक पत्रिका निर्दलीय

संरक्षक/सलाहकार सुरेन्द्रनाथ दुबे, मेघा पाटकर, डॉ। पवन कुमार जैन, सोहनराज तातेड, सेठ रामनिवास गुप्ता, कविता मल्होत्रा, मधुवाला पांडे

कार्यकारी संपादक - प्रिय अभिषेक (प्रिंस अभिशेख अज्ञानी) ९८२६४२२८२० \*प्रबंध सम्पादक- अशोक 'निर्मल'



मूल्य १० रुपये/ विशेषांक ५०/- वार्षिक ६००/- पंजीकृत डाक १०००/- शुल्क फोन पे/जी पे ९४२४४३४०१ QR CODE द्वारा या निर्दलीय

(nirdaliya) के SBI मुख्य शाखा भोपाल खाता क्रमांक ३००३०३०३५०७ (IFSC code sbi0001308)

अथवा निर्दलीय प्रकाशन के यूनियन बैंक (महाराण प्रताप नगर जेन-२ भोपाल) के खाता क्रं। १०१२११०१०००००६० में जमा कर सकते हैं।

(RNI regn. DELHI/2006/19211) ईमेल nirdaliyadaily@gmail.com ईपेपर nirdaliya.com

भोपाल कार्यालय/संपर्क: निर्दलीय प्रकाशन-एफ११६/७ शिवाजी नगर, भोपाल ४६२०१६ दूरसंपर्क ०७५५-२७७२४०६

स्वामी, मुद्रक-प्रकाशक-संपादक-कैलाश श्रीवास्तव 'आदमी' (९४२४४३४०१/८८३९७९७४४८) द्वारा निर्दलीय प्रेस,

भोपाल से मुद्रित, राघव भवन सी ६/७२ दयालपुर, दिल्ली ११० ०९० से प्रकाशित।

# ‘दिमागी नक्सली’ कहकर नित्य कर रहे बदनाम, छल-प्रपंच की राजनीति को कब लगेगा विराम?

भारतीय राजनीतिक और सामाजिक विमर्श में पिछले कुछ वर्षों के दौरान कई नए शब्द और मुहावरे गढ़े गए जिससे देश में बहस का नया दौर शुरू हुआ। जब वर्ष १९६७ में आदिवासियों को सरकार द्वारा जमीन से बेदखल किए जाने के विरुद्ध आंध्रप्रदेश में चारू मजूमदार और कानू सान्याल के नेतृत्व में नक्सलवादी आंदोलन शुरू हुआ और उन्होंने सशस्त्र क्रांति की ओर कदम बढ़ाया तो सरकार ने उन्हें निहत्था करने के लिए पुलिस बल के साथ ही अर्धसैन्य बलों की मदद ली किंतु आंदोलन दिनोंदिन उग्र रूप लेता गया तथा सरकार के समक्ष नई चुनौती सामने आती गई क्योंकि इस आंदोलन ने सीमाएं तोड़ते हुए पश्चिम बंगाल, महाराष्ट्र, उड़ीसा, मध्यप्रदेश आदि कई राज्यों में अपनी बढ़त बना ली।

उक्त आंदोलन के शमन हेतु महात्मा गांधी के आध्यात्मिक उत्तराधिकारी के रूप में ख्यात संत विनोबा भावे ने भूदान आंदोलन खड़ा किया। उनका कहना था कि भूमि के समान वितरण न होने के कारण नक्सलवादी आंदोलन खड़ा हुआ है। यदि अधिक भूमि रखने वाले लोगों से दस प्रतिशत भूमि लेकर भूमिहीनों में बांट दी जाए तो नक्सलवाद को लगाम दी जा सकती है। तदंतर उन्होंने आंध्र से पदयात्रा शुरू करते हुए इसे पूरे देश में विस्तारित किया जिसके फलस्वरूप ८८ लाख एकड़ वर्गभूमि दान में मिली और लगभग आधी भूमि भूमिहीनों के बीच वितरित भी की गई किंतु भूमि वितरण का काम केंद्र व राज्य सरकारों द्वारा गठित भूदान यज्ञ मंडलों के हाथों में सौंपे जाने का परिणाम यह हुआ कि काम ही अटक गया और शेष भूमि का वितरण आज तक नहीं किया जा सका है। यदि भूमि वितरण की प्रक्रिया को आगे बढ़ाया गया होता तो नक्सलवाद की समस्या तभी खत्म हो गई होती।

स्पष्ट है कि देश में विकास के नाम पर जो योजनाएं बनाई गई उनकी आड़ में मुख्यतः अनुसूचित जाति व जनजातियों और अत्यंत पिछड़े वर्ग के लोगों की जमीनें अधिग्रहित की गईं। प्रभावित लोगों को न्याय दिलाने हेतु नर्मदा बचाओ आंदोलन की नेत्री मेधा पाटकर ने प्रभावित लोगों को एकजुट किया किंतु उनका प्रभाव क्षेत्र नर्मदा अंचल तक सिमटा रहा जबकि यह समस्या पूरे देश में ही व्याप्त थी। मेधा जी ने नर्मदा बचाओ आंदोलन की तरह

**कैलाश आदमी**

देश के अन्य भागों में कार्यरत स्वयंसेवी संगठनों को एकजुट करने की महासंघ को भी दिशा दी किंतु सरकार ने आंदोलन के दमन हेतु तरह-तरह के हथकंडे अपनाए जिससे विकास योजनाओं से प्रभावित लोगों को आज तक न्याय नहीं मिल सका है।

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने इस बार स्वाधीनता दिवस पर अपने भाषण में कहा कि देश में हथियार बंद नक्सलियों का सफाया कर दिया गया है लेकिन दिमागी नक्सली बाकी हैं।

मोदी की भावनाओं को ध्यान में रखते हुए भाजपा के अध्यक्ष नीतिन नवीन ने पार्टी के आईटी प्रकोष्ठ का नाम बदलकर सोशल मीडिया टीम कर दिया। उन्होंने नई टीम में प्रीति गांधी को जगह दी जो गांधी के हत्यारे नाथूराम गोडसे की प्रबल समर्थक रहीं हैं। इससे लोग यह अनुमान लगा सकते हैं कि नई टीम के नए पदाधिकारियों का सोच कितना विघटनकारी होगा। समाज माध्यम प्रकोष्ठ का लक्ष्य है लोगों के दिल दिमाग और चेतना पर कब्जा करना। दरअसल जंतर-मंतर पर हुए जेन-जी के आंदोलन ने ही पार्टी नेतृत्व और मोदी को चेता दिया था। यही कारण है कि मोदी ने आंदोलनकारियों को बदनाम करने हेतु ‘दिमागी नक्सल’ शब्द गढ़ा तो दूसरी ओर सत्तारूढ़ भाजपा न केवल आईटी सेल में बदलाव किया बल्कि पार्टी के जो राष्ट्रीय पदाधिकारी नियुक्त किये गये उनमें भाजपा के मातृसंगठन राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के प्रचारकों को तरजीह दी गई।

जो लोग भाजपा की राजनीति से परिचित हैं वे जानते हैं कि पार्टी की मातृ संस्था राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ ने सर्वप्रथम श्यामा प्रसाद मुखर्जी पर हाथ रखा था जो नेहरू मंत्री मंडल के सदस्य थे। मुखर्जी हिन्दू महासभा के तत्कालीन अध्यक्ष विनायक दमोदर सावरकर के पड़ों में गिन जाते थे। मुखर्जी ने कश्मीर में जाकर कहा था-एक देश में दो प्रधानमंत्री नहीं चलेंगे, एक देश में दो झंडे नहीं चलेंगे। बाद में उन्होंने भारतीय जन संघ पार्टी का गठन संघ के इशारे पर किया जिसमें संघी नेता बलराज मधोक महती भूमिका निभा रहे थे। जब जय प्रकाश नारायण ने प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी के विरुद्ध कांग्रेस विरोधियों को एकत्र किया तथा चंद्रशेखर के नेतृत्व में जनता पार्टी खड़ी की तब संघ के वयोवृद्ध नेता नानाजी देशमुख को आगे

कर जनसंघ का विलय जनता पार्टी में कराया गया। बाद में मुरारजी देसाई की सरकार बनी जिसमें जनसंघ के अध्यक्ष रहे अटल बिहारी वाजपेयी विदेश मंत्री बनाए गए थे। यह बात अलग है कि जब समाजवादी नेताओं ने कहा कि जनसंघ से जनता पार्टी में आए नेता यह लिखकर दें कि वे राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ से कोई संबंध नहीं रखेंगे तो जन संघ से आए सभी नेताओं ने मोरार जी सरकार गिरा दी। बाद में लोकसभा के चुनाव हुए तो कांग्रेस को जबर्दस्त बहुमत मिला और इंदिरा गांधी पुनः प्रधानमंत्री बनी तो उन्होंने खालिस्तानी आंदोलन को बढ़ने से रोक दिया किंतु आगे चलकर खालिस्तानी आंदोलन से जुड़े उन्हीं के अंगरक्षकों ने उनकी हत्या कर दी।

मनुष्य के दिमाग में तरह-तरह के विचार आते हैं और कल्पनाएं दौड़ती रहती हैं किन्तु राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ ऐसा संगठन है जो मनुष्य के दिमाग के शुद्धिकरण की आड़ में ऐसा फितूर भर देता है जिससे ना केवल आम नागरिक बल्कि पुलिस, सेना व अन्य विभागों से जुड़े सरकारी अधिकारी और कर्मचारी भी भ्रमवश उससे जुड़ जाते हैं। संघ के सदस्य जिन्हें स्वयं सेवक कहा जाता है उन्हें सुबह से ही यह प्रशिक्षण दिया जाता है कि दुनिया में केवल संघ ही देशभक्तों का संगठन है तथा इस संगठन में गुरु से बढ़कर कोई हस्ती नहीं है। इस दृष्टि से संघ की सुबह लगने वाली शाखा में आने वाले प्रत्येक स्वयं सेवक को भगवा ध्वज को गुरु मानकर उसकी वंदना करना पड़ती है तथा संघ का खर्च चलाने के लिए अपनी आय का कम से कम १० प्रतिशत हिस्सा गुरु पूर्णिमा के दिन दानपात्र में डालना पड़ता है। यही नहीं समय-समय पर होने वाले कार्यक्रमों के लिए भी स्वयं सेवक न केवल स्वयं चंदा देते हैं बल्कि सेठ साहूकारों को भी संघ से जोड़कर उनसे दान दक्षिणा दिलाते हैं। संघ पंजीकृत संगठन नहीं है अतएव संस्था अपना संविधान और सदस्यों व पदाधिकारियों की सूची तथा आय व्यय का हिसाब सरकार को देने के लिए बाध्य नहीं है। इसके बावजूद संघ का आंतरिक संविधान है जिसके तहत संघ का प्रमुख सरसंघ चालक कहलाता है तथा इस पद के लिए ब्राह्मणों और मराठाओं को वरीयता दी जाती है। इस तरह संघ धर्म, जाति, झूठ और हिंसा की राजनीति का शिक्षण जेन अल्फा कहे जाने वाली पीढ़ी को देता है जिससे भ्रमित होकर वे आजीवन संघ का गुणगान करते रहते हैं। उन्हें यह पाठ पढ़ाया जाता है कि संघ गैर राजनीतिक संगठन है जबकि चुनाव आने पर उन्हें ही भाजपा प्रत्याशियों के पक्ष में प्रचार करने का काम बूथ स्तर पर दिया जाता है तथा भाजपा का राष्ट्रीय महामंत्री (संगठन) संघ से लिया जाता है। राज्यों में

भी यही व्यवस्था है। यही नहीं भाजपा नीत केंद्र सरकार और राज्य सरकारों में अधिकांश मंत्री पदों पर स्वयं सेवक ही बिठाये जाते हैं। अटल बिहारी वाजपेयी के बाद नरेंद्र मोदी प्रधानमंत्री बने तो उनकी पृष्ठभूमि भी संघ की रही। इसके अलावा केंद्र व राज्यों में निगम मंडलों में ही नहीं पंचायत के पंच-सरपंच से लेकर नगरीय निकायों के प्रत्याशियों के चयन में स्वयं सेवकों और प्रचारकों को वरीयता दी जाती है। विश्व हिंदू परिषद, भारतीय मजदूर संघ, विद्यार्थी परिषद, विद्या भारती, विश्व संवाद केंद्र आदि ३६ संगठन राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के निर्देशन में ही काम करते हैं तथा केंद्र व राज्य सरकारों से भारी मदद लेते हैं। इससे स्पष्ट है कि संघ में ही अपने ढंग के दिमागी नक्सली बैठे हुए हैं किंतु मोदी ने लाल किले से जिन दिमागी नक्सलियों के सफाए की बात कही उससे आम लोग भ्रमित हुए क्योंकि दिमागी नक्सल जैसा शब्द पहले कभी किसी ने नहीं सुना था तथापि जो राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की गतिविधियों से परिचित हैं उन्हें यह समझने में देर नहीं लगी कि मोदी केवल गैर संघियों और गैर भाजपाईयों अर्थात् विपक्ष को निशाना बना रहे हैं जबकि वास्तविक या असली दिमागी नक्सली तो संघ के स्वयंसेवक, प्रचारक और संघ से जुड़े वे लोग हैं जो न केवल सत्ता में बैठे हुए हैं बल्कि पुलिस, सेना और सरकार के प्रायः सभी विभागों में घुसपैठ कर चुके हैं। दरअसल संघ की शाखाओं में जेन-अल्फा और जेन-जी कही जाने वाली पीढ़ी के मन में यह भावना भरी जाती है कि दुनिया में हिन्दू धर्म ही सनातन धर्म है तथा अन्य धर्म अंध श्रद्धा और अंध विश्वास फैलाते हैं। इस तरह अन्य धर्मावलंबियों के प्रति नफरत का भाव भरा जाता है। पंचायत का चुनाव हो या नगरीय निकाय का अथवा विधानसभा का चुनाव हो या लोकसभा का, सभी चुनावों में संघ के स्वयं सेवकों को मतदाताओं को मतदान केंद्रों तक ले जाए जाने का काम सौंपा जाता है ताकि चुनाव के बाद बहती गंगा में वे भी हाथ धो सकें।

दरअसल प्रधानमंत्री ने 'दिमागी नक्सल' कहकर संघ-भाजपा से असहमत लोगों को निशाना बनाया ताकि संघ-भाजपा में बैठे असली नक्सलियों को बचाया जा सके। जैसा कि मैंने आरंभ में कहा कि चारू मजूमदार और कानू सान्याल के नेतृत्व में शुरू हुआ आंदोलन देशभर में फैल गया था जिससे निपटने के लिए सरकार ने अपनी सारी ताकत झोंक दी किंतु विकास की आड़ में जो विनाशकारी योजनाएं चल रही हैं उनका स्वरूप यथावत है। इन योजनाओं का शिकार अधिकांशतया देश के करोड़ों अनुसूचित और पिछड़ा वर्ग के लोग हुए हैं। सरकारी सैन्य बलों ने भले ही सशस्त्र नक्सलियों का सफाया कर दिया

हो किंतु इनके मुकाबले उन लोगों की संख्या ज्यादा है जो विकास के नाम पर चल रही योजनाओं का शिकार हुए हैं और प्रधानमंत्री ने जिन्हें दिमागी नक्सली बताया वे ही उनकी मदद कर रहे हैं ताकि वे व्यवस्था से उपजी त्रासदी का मुकाबला कर सकें। इन मददगारों में भाजपा और उसके सहयोगी दलों व संगठनों को छोड़कर अन्य सभी दल व संगठन आते हैं।

देश में संवाद व तर्क की सुदीर्घ संस्कृति रही है किंतु आज के दौर में वर्तमान व्यवस्था का विरोध करने वाले लोगों, दलों और संगठनों को सरकार और उसके अंध सहयोगी निशाना बना रहे हैं। तर्क व संवाद की जगह वैमनस्य, घृणा और नफरत ने ले ली है तथा प्रधानमंत्री की टिप्पणी से सारा दृश्य ही बदल गया है। विचार का मुकाबला विचार से किया जाना चाहिए। असंतोष से उपजे विरोध, प्रतिरोध, आलोचना और असहमति को दिमागी नक्सल कहकर बदनाम करना वर्तमान समय की सबसे बड़ी त्रासदी है। ऐसी स्थिति में देश में प्रचलित समाज माध्यमों और प्रचार माध्यमों पर बहुत बड़ी जिम्मेदारी आ जाती है किंतु खेद की बात है कि इन माध्यमों पर भी व्यवस्था ने पकड़ बना रखी है। यही कारण है कि जेन जी और जेन अल्फा के रूप में जो नई पीढ़ी मैदान में उतरी है उसके दमन हेतु हर तरह का

हथकंडा अपनाए जा रहा है। अतएव नई पीढ़ी की मानसिक जमीन और पृष्ठभूमि को नए सिरे से समझने की जरूरत है। इस हेतु उन्हें उचित शिक्षा और उचित वातावरण मिलना चाहिए और इस दृष्टि से सामाजिक चेतना व जागरूकता की आवश्यकता है। सरकार में विराजित नेतृत्व को यह समझना होगा कि नई पीढ़ी में व्यवस्था के प्रति गहन रोष, आक्रोश और असंतोष व्याप्त है तथा सरकार इनका विश्वास पूरी तरह खो चुकी है। इस पीढ़ी की ओर से जो सवाल उठाए जा रहे हैं उसका सही जवाब देने की बजाय उस पर आरोप-प्रत्यारोप लगाए जाने के साथ ही आक्रामक हमलों और अनर्गल प्रचार व प्रलाप का सहारा लिया जाता रहा तो देश में लोकतंत्र को बचाए रखना भी कठिन हो जाएगा। नई पीढ़ी जान गई है कि वर्तमान सत्ता चुनाव आयोग को अपने कब्जे में लेकर आगामी चुनावों को भी हथियाना चाहती है और सत्ताधारी भी इस आशंका से ग्रसित होकर उनके विरुद्ध नए-नए हथकंडे अपना रहे हैं। कहा जा रहा है कि वैचारिक विरोध करने वाले बंदूकधारी नक्सलवादियों से कहीं ज्यादा खतरनाक हैं।

अंत में मेरी दो काव्य पंक्तियां

‘दिमागी नक्सली’ कहकर नित्य कर रहे बदनाम,  
छल-प्रपंच की राजनीति को कब लगेगा विराम?





**प्रा. विनोद कुमार विश्वकर्मा**

# नेपाल में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता

नेपाली समाज में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता विषयक अधिकार में ये बातें शामिल हैं, जैसे - अपनी राय ज़ाहिर करने का ज़रिया, जानकारी पाने और देने का अधिकार, और लोकतंत्र की नींव। अपनी बात कहने के तरीकों के ज़रिए, लोग बोलकर, लिखकर, या कुछ प्रकाशित करके, या फिर कला, संगीत या डिजिटल प्लेटफॉर्म (जैसे सोशल मीडिया) के माध्यम से अपने विचार दूसरों तक पहुँचा सकते हैं। जानकारी खोजने

और उसे साझा करने के दायरे में न केवल अपने विचार व्यक्त करने का अधिकार शामिल है, बल्कि दूसरों के विचार सुनने और जानकारी खोजने, प्राप्त करने तथा दूसरों तक पहुँचाने का अधिकार भी शामिल है। नेपाल में जहाँ तक दलित समुदाय का संबंध है

इस स्तंभ को लोकतंत्र की रीढ़ माना जाता है क्योंकि नागरिक सरकार की आलोचना करने, सवाल उठाने और सामाजिक सुधार के लिए आवाज़ उठाने के अधिकार का इस्तेमाल करते हैं।

दलित समुदाय शब्द उन जातियों और जातीय समूहों के लिए इस्तेमाल किया जाता है जिन्हें पारंपरिक हिंदू जाति व्यवस्था के तहत अछूत या अपवित्र (जिनसे पानी नहीं लिया जाता) माना जाता था और जिन्हें सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और शैक्षिक रूप से हाशिए पर रखा गया है।

दलित शब्द का शाब्दिक अर्थ है दबा हुआ या उत्पीड़ित। मुलुकी ऐन (द नेशनल कोड) ने जाति व्यवस्था को संस्थागत रूप दिया और दलितों को सामाजिक पदानुक्रम में सबसे निचले पायदान पर धकेल दिया। दलितों को अस्पृश्यता (जिसमें संपर्क होने पर धार्मिक शुद्धि की आवश्यकता होती है) के दायरे में आने वाले समूह के रूप में वर्गीकृत करके, इस कानून ने उन्हें सरकारी सेवाओं, सुविधाओं और शिक्षा से वंचित कर दिया। हालांकि साल २०२० (सन् १९६३) के मुलुकी ऐन (द नेशनल कोड) और नेपाल के मौजूदा संविधान में छुआछूत को दंडनीय अपराध माना गया है, फिर भी ग्रामीण इलाकों और कुछ शहरी इलाकों में सार्वजनिक

पानी के नलों, मंदिरों और निजी घरों में दलितों के साथ भेदभाव पूरी तरह खत्म नहीं हुआ है।

नेपाल में दलितों के बीच गरीबी की दर राष्ट्रीय औसत से कहीं ज्यादा है। ईकान्तिपुर जैसे मीडिया आउटलेट्स की रिपोर्ट के अनुसार, नेपाल में लगभग ५१ प्रतिशत दलित परिवारों के पास अपने नाम पर

ज़मीन नहीं है या वे आंशिक रूप से भूमिहीन हैं (यानी उनके पास बहुत कम ज़मीन है)। नेपाल के मधेश इलाके में ज़मीन-विहीन दलितों की स्थिति और भी गंभीर है; आँकड़े बताते हैं कि ५८ प्रतिशत से ज्यादा मधेशी दलितों के पास ज़मीन नहीं है। राय की मुख्यधारा से बाहर रखे जाने के कारण,

दलित समुदाय खासकर मधेशी दलित महिलाओं की शिक्षा की स्थिति राष्ट्रीय साक्षरता दर की तुलना में काफी कमजोर है। साल २०७८ (२०२१) की राष्ट्रीय जनगणना के अनुसार, दलित समुदाय की आबादी कुल जनसंख्या का १३४ प्रतिशत (लगभग ३८.६ लाख) है। हालांकि, दलित अधिकार कार्यकर्ताओं का दावा है कि यह आंकड़ा २० प्रतिशत से अधिक है।

दलितों के प्रति समाज का दृष्टिकोण- हालांकि ऐतिहासिक रूप से दलित समुदाय के प्रति समाज का नज़रिया भेदभावपूर्ण रहा है, लेकिन आज धीरे-धीरे सकारात्मक बदलाव आ रहे हैं। फिर भी, असल में पूरी समानता हासिल करने के लिए अभी भी काफी संघर्ष और ज्यादा जागरूकता की ज़रूरत है। हम इस नज़रिए को मुख्य रूप से तीन पहलुओं से समझ सकते हैं --

१. पारंपरिक और संकीर्ण नज़रिया (नकारात्मक पहलू) - समाज का एक हिस्सा अभी भी इस अंधविश्वास को मानता है कि किसी व्यक्ति का दर्जा चाहे वह ऊँचा हो या नीचा जन्म से तय होता है। ग्रामीण इलाकों और यहाँ तक कि कुछ शहरी इलाकों में भी पानी के स्रोतों, मंदिरों और सामूहिक भोज में शामिल होने को लेकर भेदभावपूर्ण सोच बनी हुई है। एक ऐसी सोच आज भी मौजूद है जो दलितों और गैर-दलितों के बीच विवाह को आसानी से स्वीकार

नहीं करती; यहाँ तक कि इसके कारण सामाजिक बहिष्कार का सामना भी करना पड़ सकता है।

**२. आधुनिक और प्रगतिशील दृष्टिकोण (सकारात्मक पहलू)** - नई पीढ़ी, शिक्षित वर्ग और मानवाधिकार कार्यकर्ता दलित समुदाय को समान नागरिकता और अधिकारों के ज़रिए से देखते हैं। समाज ने धीरे-धीरे कला, साहित्य, राजनीति, प्रशासन और उद्यमिता जैसे क्षेत्रों में दलित समुदाय के योगदान को स्वीकार करना और उसका सम्मान करना शुरू कर दिया है। लोगों के बाहरी व्यवहार में सुधार आया है क्योंकि वे यह समझने लगे हैं कि जाति-आधारित भेदभाव और छुआछूत कानून के तहत दंडनीय अपराध हैं।

**३. राय और कानूनी दृष्टिकोण-नेपाल के संविधान २०१५** ने देश को छुआछूत से मुक्त घोषित किया है और दलितों के अधिकारों को मौलिक अधिकारों के रूप में गारंटी दी है। शिक्षा, सरकारी सेवा और राजनीति में दलित समुदाय का प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने के लिए विशेष प्रावधान किए गए हैं, जिससे उन्हें राय की मुख्यधारा में लाने में मदद मिलती है।

**दलित समुदाय के लिए अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता** - दलित समुदाय के लिए अभिव्यक्ति की आज़ादी, राय के लोकतांत्रिक स्वरूप, सामाजिक न्याय और समानता को मापने का एक अहम पैमाना है। हालाँकि नेपाल के संविधान २०१५ का अनुच्छेद १७ हर नागरिक को अपनी राय रखने और अभिव्यक्ति की आज़ादी की गारंटी देता है, लेकिन दलित समुदाय के लिए, जो ऐतिहासिक रूप से नेपाल के सामाजिक और सांस्कृतिक ताने-बाने में हाशिए पर रहा है -- यह आज़ादी सिर्फ़ एक कानूनी अधिकार नहीं है; बल्कि यह उनके अस्तित्व, आत्म-सम्मान और पहचान की लड़ाई लड़ने का एक मुख्य ज़रिया है।

**दलित समुदाय के लिए अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की स्थिति और चुनौतियाँ** - नेपाल के संदर्भ में, दलित समुदाय की अभिव्यक्ति की आज़ादी का सीधा संबंध उनके राजनीतिक, सामाजिक और नागरिक अधिकारों को हासिल करने के आंदोलन से है। नेपाल के संविधान का अनुच्छेद १७(२)(क) दलित समुदाय के सदस्यों सहित हर नागरिक को राय और अभिव्यक्ति की आज़ादी की गारंटी देता है। हालाँकि, ऐतिहासिक उत्पीड़न और संरचनात्मक भेदभाव के कारण, दलितों के लिए इस आज़ादी का व्यावहारिक इस्तेमाल अधूरा ही रह गया है। दलितों की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के मुख्य पहलू इस प्रकार हैं --

**१. ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और चुप्पी की संस्कृति** -- सदियों से नेपाली समाज में जड़ जमाए बैठी मनुवादी जाति

व्यवस्था और मुलुकी ऐन (१९६३) जैसे भेदभावपूर्ण कानूनों ने न केवल दलित समुदाय को मानवाधिकारों से वंचित किया, बल्कि उनकी आवाज़ को पूरी तरह से दबा भी दिया। दलित समुदाय में चुप्पी की संस्कृति इसलिए पनपी क्योंकि सामाजिक माहौल ऐसा था कि तथाकथित ऊंची जातियों के सामने सवाल उठाना या अपनी बात रखना अपराध माना जाता था। इसलिए, आज दलित समुदाय के लिए अभिव्यक्ति की आज़ादी का मतलब है उस सदियों पुरानी चुप्पी को तोड़ना।

**३. संवैधानिक और कानूनी व्यवस्था** - नेपाल के संविधान की प्रस्तावना में ही जाति-आधारित भेदभाव और छुआछूत को खत्म करके एक समानता-आधारित समाज बनाने का संकल्प शामिल है। अनुच्छेद २४ (छुआछूत और भेदभाव के खिलाफ अधिकार) और अनुच्छेद ४० (दलितों के अधिकार) के तहत विशेष अधिकारों की गारंटी दी गई है। इस संदर्भ में, संविधान विचार और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की पूरी गारंटी देता है, जिससे दलित समुदाय अपनी शिकायतों, असंतोष और मांगों को राय और समाज के सामने रख सकता है। राय और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता (अनुच्छेद १७) - नेपाल के संविधान के अनुच्छेद १७(२)(क) के तहत, हर नागरिक को राय और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता प्राप्त है। इसके अनुसार, दलित समुदाय के लोगों को भी बिना किसी डर या रुकावट के अपनी भावनाएं, शिकायतें और मांगें व्यक्त करने का कानूनी अधिकार है।

**३. प्रतिरोध की चेतना और आंदोलनों की नींव** - अभिव्यक्ति की आज़ादी के कारण ही दलित समुदाय साहित्य, कला, मीडिया और ज़मीनी आंदोलनों के ज़रिए अपनी आवाज़ मज़बूती से उठा पाया है। रुकुम वेस्ट (नेपाल का एक जिला) में नवराज बीके और अजीत मिजार की हत्या जैसी भेदभावपूर्ण घटनाओं के खिलाफ़ न्याय की मांग करना अभिव्यक्ति की आज़ादी की ताकत से ही संभव हो पाया है। अपने अधिकारों के बारे में सवाल उठाना और भेदभावपूर्ण सामाजिक ढांचों को चुनौती देना ही इस समुदाय की अभिव्यक्ति का मूल आधार है।

**मौजूदा चुनौतियाँ** - संविधान द्वारा दिए गए अधिकारों के बावजूद, दलित समुदाय की अभिव्यक्ति की आज़ादी अभी तक पूरी तरह से साकार नहीं हो पाई है और न ही व्यवहार में यह डर से मुक्त हो पाई है। मुख्य चुनौतियाँ इस प्रकार हैं --

**१. सामाजिक और मनोवैज्ञानिक दबाव** - जब दलित समुदाय गांवों और स्थानीय स्तर पर जाति - आधारित भेदभाव या उत्पीड़न के खिलाफ़ आवाज़ उठाता है, तो उन्हें

सामाजिक बहिष्कार, धमकियों और आर्थिक नाकेबंदी जैसी चुनौतियों का सामना करना पड़ता है।

**२.मीडिया और सरकारी ढांचों तक सीमित पहुँच** - मुख्यधारा के मीडिया, नीति - निर्माण करने वाली संस्थाओं और राजनीतिक दलों के उच्च स्तरों पर दलित समुदाय का प्रतिनिधित्व बहुत कम है। नतीजतन, उनके मुद्दों को पर्याप्त कवरेज नहीं मिल पाता और उनकी आवाज़ हाशिए पर ही रह जाती है।

**३.डिजिटल स्पेस और साइबरबुलिंग** - जब दलित एक्टिविस्ट या समुदाय के सदस्य सोशल मीडिया पर अपनी बात रखते हैं या न्याय की मांग करते हैं, तो उन्हें सुनियोजित तरीके से अपमान, अभद्र भाषा और जाति - आधारित नफ़रत फैलाने वाले बयानों का सामना करना पड़ता है।

**४. संरचनात्मक दंड-मुक्ति और न्याय में बाधा** - भेदभाव के खिलाफ आवाज़ उठाने या शिकायत दर्ज कराने पर, स्थानीय स्तर पर समझौता करने का दबाव डाला जाता है; इसके अलावा, चूँकि पुलिस प्रशासन दलितों की बात को गंभीरता से नहीं लेता, इसलिए आवाज़ उठाने और न्याय पाने का उनका संकल्प कमजोर पड़ जाता है।

**सुधार के उपाय और आगे की राह-** दलित समुदाय की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को वास्तविक और सार्थक बनाने के लिए, राय और नागरिक समाज का निम्नलिखित कदम उठाना ज़रूरी है -

**१.सुरक्षित माहौल बनाना** - जब दलित समुदाय भेदभाव और अन्याय के खिलाफ आवाज़ उठाए, तो राय को उनकी जान - माल की सुरक्षा और सामाजिक सुरक्षा की गारंटी देनी चाहिए।

**२.मीडिया और पब्लिक सेक्टर में समावेश** - दलित समुदाय की कहानियों और आवाज़ों को मुख्यधारा में लाने के लिए मीडिया, साहित्य और शिक्षा के क्षेत्र में उनकी सार्थक भागीदारी बढ़ाई जानी चाहिए।

**३.नफ़रत फैलाने वाली बात के खिलाफ सख्त कानून** - दलित समुदाय को निशाना बनाकर जाति - आधारित अपशब्द कहने और अपमानित करने की घटनाओं का चेहरे से सोशल मीडिया पर हों या सार्वजनिक जगहों पर, को कानूनी दायरे में लाया जाना चाहिए और उन पर सख्त कार्रवाई की जानी चाहिए।

**४.जागरूकता और क्षमता निर्माण** - दलित युवाओं और महिलाओं को कानूनी साक्षरता, डिजिटल संचार और नेतृत्व विकास का प्रशिक्षण देकर उन्हें अपने विचार स्पष्ट और प्रभावी ढंग से रखने के लिए सशक्त बनाया जाना चाहिए।

**निष्कर्ष-** अभिव्यक्ति की आज़ादी का मतलब सिर्फ़

बोलने का अधिकार नहीं है; इसमें अपनी बात को सुना जाना और सम्मान के साथ जीना भी शामिल है। नेपाल सरकार की दलित समुदाय से माफ़ी मांगने, विशेष सुधार कार्यक्रम शुरू करने और संसद में दलित अधिकारों पर नया बिल पेश करने की तैयारी सकारात्मक कदम हैं। हालाँकि, देश में सच्चा लोकतंत्र और सामाजिक न्याय तब तक स्थापित नहीं हो सकता, जब तक कि सामाजिक पदानुक्रम में सबसे निचले पायदान पर मौजूद दलित समुदाय बिना किसी डर के माहौल में अपनी शिकायतें और विचार व्यक्त न कर सके। नेपाल में दलित समुदाय की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता औपचारिक समानता के लिहाज़ से तो बेहतरीन है, लेकिन वास्तविक समानता के मामले में कमज़ोर है। दलित समुदाय के विचारों और आवाज़ को सचमुच स्वतंत्र और असरदार बनाने के लिए सिर्फ़ कानून बनाना काफी नहीं है; इसके लिए ज़रूरी है कि राय की नीति-निर्माण प्रक्रिया में उनकी वास्तविक भागीदारी बढ़ाई जाए, सामाजिक सोच में बदलाव लाया जाए और कानूनी तौर पर समाधान दिलाने वाले तंत्रों को सख्ती और निष्पक्षता से लागू किया जाए। हालाँकि नेपाल का संविधान हर नागरिक को अभिव्यक्ति की आज़ादी की गारंटी देता है, लेकिन दलित समुदाय के लिए इस अधिकार का पूरी तरह से इस्तेमाल करना चुनौतीपूर्ण बना हुआ है।

ऐतिहासिक रूप से हाशिए पर रहे दलित समुदाय के लिए, अपनी तकलीफ़ों, अधिकारों और पहचान के बारे में आवाज़ उठाना सिर्फ़ आज़ादी का मामला नहीं है; यह आत्म-सम्मान और सामाजिक न्याय पाने का एक अहम ज़रिया है। हालाँकि डिजिटल प्लेटफ़ॉर्म और सोशल मीडिया ने दलित समुदाय को अपनी आवाज़ उठाने के नए मौके दिए हैं, लेकिन साथ ही ऑनलाइन उत्पीड़न, साइबर-बुलिंग और उनके खिलाफ जातिवादी टिप्पणियों ने अभिव्यक्ति की आज़ादी के सामने नई चुनौतियाँ भी खड़ी कर दी हैं। इसलिए, दलित समुदाय की अभिव्यक्ति की आज़ादी को सुरक्षित और सार्थक बनाने के लिए, सरकारी एजेंसियों को सिर्फ़ कानूनी प्रावधानों पर निर्भर रहने के बजाय ज़िम्मेदार और संवेदनशील होना चाहिए। साथ ही, दलित अधिकार कार्यकर्ताओं और मीडिया कर्मियों की सुरक्षा सुनिश्चित करना और समाज में फैली जातिवादी सोच में बदलाव लाना भी ज़रूरी है। जब तक ऐसा माहौल नहीं बनता जिसमें दलित नागरिक, जो सामाजिक पदानुक्रम में सबसे निचले पायदान पर हैं, बिना किसी डर या हिचकिचाहट के अपनी बात कह सकें, तब तक लोकतंत्र और समावेशी समाज का सपना अधूरा ही रहेगा।

-काठमांडू

# विरोध के उठते स्वर...

विगत स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर अपने लाल किले से संबोधन में प्रधानमंत्री मोदी ने; अपने चाहने वाले समर्थकों, प्रशंसकों और अनाम भगतों की; हिंसक किंतु गैर जवाबदेह भीड़ को स्पष्ट तौर पर इशारा कर दिया कि विरोध के उठते स्वरों, पढ़े-लिखे प्रबुद्ध लोगों, असंगत नीतियों पर सवाल उठाने वालों या प्रदर्शनकारी पीड़ित आंदोलनकर्ताओं पर टूट पड़ो।



राजू पटेल  
( तालिब-भोपाली )

हमने देखा कि 'स्वतंत्र, पढ़िएगा-स्वच्छंद भारद्वाज' और उनके जैसे अनगिनत लोग अब अपने शिकारों की निशानदेही करने, उन्हें घेर लेने, सबक सिखा देने, डरने, धमकाने, तंग करने और हर मुमकिन तरीकों से चुप कर देने की कोशिशों में लग पड़े हैं। प्रधानमंत्री के शब्दों के हाव भाव कुछ इतर संदेश दे गए। हालांकि विपक्षी ने भी प्रतिक्रिया देने में उतावली की।

संबोधन के दौरान मोदीजी ने कहा कि माओवादियों का सत्ता के गलियारों में लंबा दबदबा रहा है और वे नीतियों को प्रभावित करते रहे हैं..और आगे.. हथियारी नक्सल तो गए लेकिन दिमागी नक्सल.. ये दिमागी नक्सल मौके की तलाश में हैं। हिंसा अराजकता के वो रास्ते खोज रहे हैं। समाज को गलत रह पर घसीटने के लिए भांति भांति के दाँव कर रहे हैं। इन्हें पहचानना और आइसोलेट करना होगा और विकसित राष्ट्र बनाने के लिए मुख्यधारा की ओर युवा पीढ़ी को जोड़ना होगा।

मोदी ने बाद में एक अन्य कार्यक्रम में यह जोड़ा कि, २०१३ के बाद अब भारत आर्थिक और सामाजिक रूप से कहीं अधिक समृद्ध और सुरक्षित है। यह देखकर कुछ लोगों में छटपटाहट बढ़ रही है और वे बौखलाए हुए हैं। मोदी ने अपने एक अन्य संबोधन में प्रयुक्त दिमागी नक्सल शब्द को एक हौम्योपैथिक खुराक बताया।

मोदी की ये फुफकार जेन-जी की, उनकी अजेय और दमदार छवि पर विदारक ज़ोरदार विद्रूप चोट का ही नतीजा है कि अपनी दरकती छवि को बचाने के लिए उन्हें रैंप वॉक करना पड़ा।

कड़वी सच्चाई यह है कि एक तरफ लोगों की जानें जा रही हैं दूसरी तरफ विकास की नौटंकियां चल रही हैं। दरअसल मोदी जहां से आते हैं उन्होंने ऐसे अमूर्त, अव्यक्त लेकिन इशारे पर मरने मिटने को तैयार लठैती फौज तैयार कर रखी है जो मौका आते ही और इशारा मिलते ही फ़ौरन

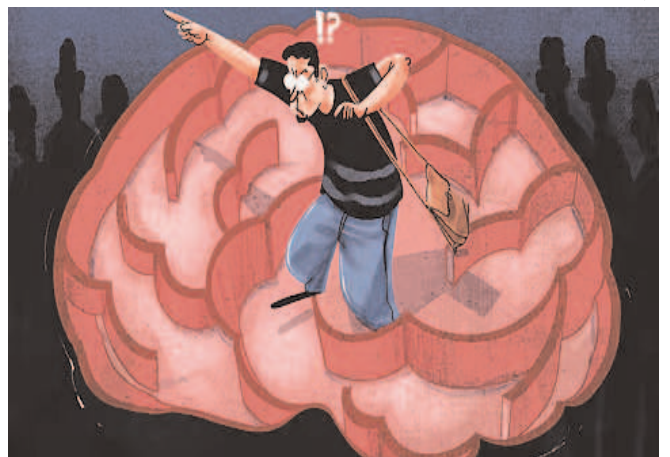
रोड पर हर मामले का फैसला करने निकल पड़ती है। वह यह नहीं बताते कि नीट पेपर लीक मामले को लेकर आंदोलनकर्ता जेन-जी की रचनात्मकता के आगे उनकी ट्रोलर्स सेना को चूँकि इस दौरान जबरदस्त मुंह की खानी पड़ी है और मन मसोस कर हालात देखते रहने और धर्मेन्द्र प्रधान को मजबूरी में इस्तीफा देते देखने को मजबूर होना पड़ा है।

मार तगड़ी और चोट गहरी जान पड़ती है। तो दरअसल ये दिमागी नक्सल वही हैं जो मालिकों की मर्जी पर शिकारी कुत्तों की तरह दिखाए गए लोगों पर अनायास टूट पड़ते हैं। धर्म रक्षा की आड़ में तमाम अपराधी खुद को कानून से ऊपर और समाज का रक्षक होने का दंभ लिए फिरते हैं।

किंतु ये हैं तुच्छ अपराधीभर। तो दिमागी नक्सल वे भी हैं; जो रोजी-रोटी से मोहताज और विपन्न जीवन जीने वाले लोगों को संस्कृति, धर्म, समाज, जाति श्रेष्ठता और वर्चस्व के लिए अपने से भिन्न विचार रखने वाले लोगों से अक्सर भिड़ाए रहते हैं और जैसे ही इन पर ज़हर का असर कुछ कम होता जान पड़ता है, जहर की नई खुराक विभिन्न माध्यमों से उनका दिमागों में उड़ेल देते हैं। दिमागी नक्सली तो वे हैं जो लिंगिंग, मारपीट, हत्या, बलात्कार, लूट, आगजनी के आरोपियों को बचाते हैं। उनके पक्ष में मोर्चा निकालते हैं।

अब सवाल है कि जिनकी स्वयं की सत्ता की सीढ़ी ही झूठ, प्रपंच, छलावे, सामाजिक विद्वेष, नरसंहार और समाज के सुख चैन को सिरे से आग लगाकर हासिल की गई हो, आखिर वे; किस मुंह से और किसे इतनी बेशर्मी से दिमागी नक्सल कह जाते हैं? अब जनता जवाब चाहती है।

-भोपाल



# विचारों का विरोध और हिंसा का समर्थन नक्सली विचारधारा का समर्थन नहीं है

समाज में जब भी नक्सली शब्द सुनाई देता है, तो हमारे सामने हिंसा, हथियार और व्यवस्था के विरुद्ध सशस्त्र संघर्ष की तस्वीर उभरती है। लेकिन आज एक नया और गंभीर सवाल सामने है—क्या नक्सलवाद केवल जंगलों और बंदूकों तक सीमित है, या उसकी कोई वैचारिक अभिव्यक्ति भी हो सकती है? इसी संदर्भ में दिमागी नक्सली जैसे शब्द का इस्तेमाल सार्वजनिक बहस में सुनने को मिलता है।



विशाल श्रीवास्तव

दरअसल, किसी व्यक्ति के विचार सरकार की आलोचना करते हैं, वह किसी नीति का विरोध करता है या वह सामाजिक असमानता पर सवाल उठाता है, तो मात्र इन कारणों से उसे नक्सली कहना उचित नहीं है। लोकतंत्र में असहमति, आलोचना और शांतिपूर्ण विरोध नागरिक अधिकारों का हिस्सा हैं। समस्या तब गंभीर होती है, जब कोई विचारधारा हिंसा, भय, जबरदस्ती या लोकतांत्रिक संस्थाओं को हिंसक तरीके से समाप्त करने को उचित ठहराने लगे।

दिमागी नक्सली शब्द इसलिए भी संवेदनशील है, क्योंकि इसका इस्तेमाल कई बार राजनीतिक या सामाजिक बहस में विरोधी विचार रखने वाले लोगों के लिए आरोप के रूप में किया जाता है। इससे वास्तविक नक्सली हिंसा और लोकतांत्रिक असहमति के बीच की महत्वपूर्ण रेखा धुंधली हो सकती है।

नक्सलवाद की पृष्ठभूमि में सामाजिक-आर्थिक असमानता, भूमि और संसाधनों से जुड़े विवाद, आदिवासी क्षेत्रों की समस्याएं तथा राज्य और स्थानीय समुदायों के बीच अविश्वास जैसे कई ऐतिहासिक और राजनीतिक पहलू रहे हैं। इन समस्याओं पर चर्चा करना और उनके समाधान की मांग करना अपने-आप में नक्सली विचारधारा का समर्थन नहीं है। वास्तविक चुनौती यह पहचानने की है कि किसी विचार की आलोचना की जा रही है या हिंसक विचारधारा का समर्थन किया जा रहा है। यदि कोई व्यक्ति लोकतांत्रिक व्यवस्था के भीतर रहकर बदलाव चाहता है, तो उसके विचारों का उत्तर तर्क और संवाद से दिया जाना चाहिए। वहीं हिंसा को बढ़ावा देना, लोगों को हिंसक गतिविधियों के लिए उकसाना या प्रतिबंधित हिंसक संगठनों की गतिविधियों में सक्रिय भागीदारी एक अलग और गंभीर

विषय है, जिसका निर्धारण प्रमाण और कानून के आधार पर होना चाहिए। आज सोशल मीडिया के दौर में यह फर्क और महत्वपूर्ण हो गया है। अधूरी जानकारी, उत्तेजक पोस्ट और राजनीतिक आरोप कुछ ही मिनटों में हजारों लोगों तक पहुंच जाते हैं। किसी व्यक्ति को केवल उसकी पोस्ट, नारे या असहमति के आधार पर किसी गंभीर विचारधारा से

जोड़ देना समाज में अविश्वास और ध्रुवीकरण बढ़ा सकता है। इसलिए दिमागी नक्सली कौन? का जवाब किसी एक व्यक्ति, वर्ग या विचारधारा के नाम में नहीं खोजा जाना चाहिए। बेहतर सवाल यह है कि क्या कोई व्यक्ति लोकतांत्रिक असहमति के अधिकार का प्रयोग कर रहा है या हिंसा और जबरदस्ती को स्वीकार कर रहा है?

लोकतंत्र की ताकत यही है कि उसमें असहमति के लिए जगह होती है। विचारों का मुकाबला विचारों से और हिंसा का मुकाबला कानून के जरिए होना चाहिए। किसी को दिमागी नक्सली कहने से पहले उसके विचार, कार्य और प्रमाणों को अलग-अलग देखना आवश्यक है। यही जिम्मेदार पत्रकारिता और स्वस्थ लोकतांत्रिक संवाद की बुनियाद है।

निष्कर्षतः, नक्सलवाद जैसे गंभीर विषय को नारों और आरोपों से नहीं, बल्कि तथ्य, कानून, सामाजिक परिस्थितियों और लोकतांत्रिक मूल्यों के संदर्भ में समझने की आवश्यकता है। शब्दों की गर्मी से ज्यादा जरूरी है तथ्यों की रोशनी—क्योंकि विचारों के लोकतांत्रिक मतभेद को हिंसक विचारधारा का पर्याय बना देना स्वयं लोकतांत्रिक संवाद को कमजोर कर सकता है।

—भोपाल



# विवेचना का विषय है 'दिमागी नक्सल'

'दिमागी नक्सली कौन'? विषय वस्तु काफी सोच, विचार के दायरे में आ रहा है। मुद्दे की बात यह है कि १५ अगस्त २०२६ को हमारे देश के प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने लाल किले में देश के नागरिकों को दिये गये अपने भाषण में इन शब्दों का प्रयोग किया दिमागी नक्सली कौन? दरअसल सरकारी और राजनैतिक संदर्भ में इस विषय पर सोचना भी है और समझना भी है।



चंचलिका शर्मा

प्रधानमंत्री द्वारा दिमागी नक्सली कतई किसी भी राजनैतिक दल, संगठन अथवा विपक्षीयदल नेताओं को नहीं कहा गया था, बल्कि यह एक वैचारिक

मानसिकता की ओर इशारा करता है।

मायो बाद और हिंसा का समर्थन- कुछ लोग शस्त्र तो नहीं उठाते लेकिन वैचारिक रूप से हिंसा और अराजकता का समर्थन करते हैं।

संविधान में अविश्वास - जो लोग संविधान, लोक तान्त्रिक संस्थाओं और देश की न्यायपालिका पर सवाल उठाते हैं या उन

पर अविश्वास पैदा करते हैं।

अलगाववादी विचार धारा- जो लोग देश की अखंडता और सुरक्षा के खिलाफ आवाज़ उठाते, माहौल बनाते हैं।

उक्त संबंधित विचार वालों को दिमागी नक्सली शब्द पर अड़चन आन पड़ी। प्रधानमंत्री जी के इस भाषण से देश में एक राजनैतिक बहस छिड़ गयी है। जिसका समाधान अब तक नासमझी की वजह से नहीं हो पाया है।

विपक्षी दलों की प्रतिक्रिया - आलोचकों और विपक्षी दलों ने इस पर सवाल उठाये कि इस शब्द की सटीक परिभाषा क्या है? क्या सरकार की नीतियों की आलोचना करने वालों पर निशाना बनाया जा रहा है? कुछ विपक्षी नेताओं ने तो इस पर तंज भी कसे।

सरकार का रुख- सरकार का मानना है कि जंगलों में हथियार बंद नक्सलवाद के कमजोर होने के बाद अब वैचारिक और बौद्धिक स्तर पर समाज को बांटने वाली यह कॉग्निटिव वार फेयर जैसी सोच देश के विकास में एक बहुत बड़ा खतरा है। प्रधानमंत्री का कहा शब्द दिमागी नक्सलवाद विवेचनात्मक और बौद्धिक स्तर पर समझा जा सकता है। -बड़ोदरा

## अराजकता का नया दौर...

यह विषय बहुत ही गूढ़ है। इस विषय पर सभी की अपनी-अपनी विचारधाराएँ हैं। आज मैं आप सभी के समक्ष अपनी विचारधारा इस विषय पर प्रस्तुत कर रही हूँ।

बहुत से लोग ऐसे होते हैं जो देश की तरक्की को देख नहीं सकते। जो लोग वैचारिक रूप से अराजकता फैलाते हैं और देश को भटकाने का प्रयास कर रहे हैं वह दिमागी नक्सलवादी कहलाते हैं। प्रधानमंत्री पीएम मोदी जी का



शुभा वर्मा

कहना है कि हथियारबंद नक्सलवादी का सफाया काफी हद तक हो चुका है वैचारिक और मानसिक स्तर पर देश का विरोधी अभी भी सक्रिय है। देश की सरकार के खिलाफ जो आवाज़ उठा रहा है तो वही दिमागी नक्सलवादी है। जो कश्मीर को भारत से अलग समझता है वही नक्सलवादी है। जो भारतवासी भारत में ही रहकर पड़ोसी अन्य देशों को अच्छा और अपना समझता है वही नक्सलवादी है। समाज को बांटने वाले और गलत राह पर चलने वाले नक्सलवादी कहलाते हैं। दिमागी नक्सलवादी मौके की तलाश में रहते

हैं। तरह-तरह के दांव अपनाते हैं। हिंसा और अराजकता फैला रहे हैं। अराजकता रूपी खड्डा खोद रहे हैं, जो लोग संविधान को नहीं मानते हैं वही दिमागी नक्सलवादी कहलाते हैं।

पूर्व प्रधान मंत्री मनमोहन सिंह के अनुसार यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि १३ अप्रैल २००६ को भारत के इतिहास में आज तक अनंत आंतरिक सुरक्षा के लिए उत्पन्न सबसे बड़ा खतरा है। जब बंदूक की ताकत टूट चुकी है तो जरूरत है उन विचारधाराओं को सुधारने की और गलत सिस्टम को सुधारने की जो समाज में अपनी मजबूत जड़े जमाएँ बैठे हैं।

अब जरूरत है उन संवेदनशील समाज में संतुलन बनाए रखने की। नक्सलवादी विचारधारा देश के लिए खतरनाक है। देशद्रोहियों से देश को सतर्क रहने की जरूरत है। दिमागी नक्सलवादियों से विचारधाराओं को चुनौती देनी होगी हमारे समाज को नक्सलवादियों से संभाल कर रहना होगा। - प्रयागराज

# विचार की चुनौती है सबसे बड़ी

बंदूक से होने वाली हिंसा दिखाई देती है, लेकिन हिंसा और व्यवस्था-विरोधी सोच को सही ठहराने वाली विचारधारा अक्सर अदृश्य रूप से फैलती है। यही कारण है कि आज नक्सलवाद की चुनौती को केवल जंगलों में सक्रिय हथियारबंद समूहों तक सीमित करके नहीं देखा जा सकता।

असली सवाल यह है कि ऐसी विचारधारा समाज और खासकर युवाओं के बीच किस तरह अपनी जगह बनाती है।

१५ अगस्त को लाल किले से प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने कहा हथियारबंद नक्सलवाद के खिलाफ देश ने बड़ी सफलता हासिल की है, लेकिन अब दिमागी नक्सल एक नई चुनौती के रूप में सामने आ रहा है।

इसके बाद इस शब्द को लेकर राजनीतिक और सामाजिक बहस तेज हो गई।

हथियारबंद नक्सली के खिलाफ सुरक्षा बलों की कार्रवाई अपेक्षाकृत स्पष्ट होती है। हथियार, संगठन और हिंसक गतिविधियां दिखाई देती हैं। ऐसे मामलों में कानून के तहत कार्रवाई की जा सकती है लेकिन विचारधारा के स्तर पर चुनौती कहीं अधिक जटिल है। कोई व्यक्ति स्वयं हथियार न उठाए, फिर भी हिंसा को उचित ठहराए, लोकतांत्रिक संस्थाओं के प्रति अविश्वास पैदा करे या युवाओं को व्यवस्था के खिलाफ हिंसक रास्ते की ओर प्रेरित करे, तो उसका प्रभाव लंबे समय तक रह सकता है।

यही वजह है कि विचारधारा को केवल सुरक्षा के नजरिए से देखना पर्याप्त नहीं है। बेरोजगारी, गरीबी, असमानता, भ्रष्टाचार और अन्याय जैसी वास्तविक समस्याएं यदि लंबे समय तक बनी रहें तो वे उग्र विचारों के लिए जमीन तैयार कर सकती हैं। इसलिए नक्सल प्रभावित क्षेत्रों में सुरक्षा के साथ शिक्षा, रोजगार, स्वास्थ्य, सड़क, इंटरनेट और सरकारी सेवाओं की पहुंच भी जरूरी है।

दिमागी नक्सलवाद की चर्चा का एक दूसरा पहलू भी है। लोकतंत्र में सरकार की आलोचना करना, उसकी नीतियों पर सवाल उठाना या अन्याय के खिलाफ आवाज उठाना नक्सलवाद नहीं है। असहमति लोकतंत्र की स्वाभाविक प्रक्रिया है। इसलिए किसी व्यक्ति को केवल सरकार की आलोचना करने के कारण दिमागी नक्सली करार देना लोकतांत्रिक व्यवस्था के लिए उचित नहीं होगा।



वीरेंद्र बहादुर सिंह

सबसे बड़ी चुनौती असहमति और हिंसक विचारधारा के बीच अंतर करने की है। लोकतांत्रिक विरोध और हिंसा के समर्थन को एक ही तराजू में नहीं तौला जा सकता। सरकार की आलोचना लोकतंत्र को कमजोर नहीं करती; बल्कि शांतिपूर्ण और संवैधानिक असहमति लोकतंत्र को मजबूत करती है।

आज यह चुनौती इसलिए भी गंभीर है, क्योंकि विचारों के प्रसार के साधन पहले से

कहीं अधिक व्यापक हो गए हैं। सोशल मीडिया, वीडियो, किताबें, भाषण, कैम्पस और डिजिटल मंचों के जरिए कोई विचार कुछ ही समय में हजारों-लाखों लोगों तक पहुंच सकता है। झूठी या भड़काऊ जानकारी भी तेजी से फैल सकती है। ऐसे में वैचारिक संघर्ष केवल राजनीतिक नहीं, सामाजिक और शैक्षणिक चुनौती भी बन जाता है।

युवा इस बहस के केंद्र में हैं। जब किसी युवा को रोजगार नहीं मिलता, उसे व्यवस्था में न्याय दिखाई नहीं देता या वह लगातार असमानता का अनुभव करता है, तब उग्र विचार उसे आकर्षित कर सकते हैं। इसका समाधान केवल पुलिस और सुरक्षा बलों की कार्रवाई नहीं हो सकता। युवाओं को बेहतर शिक्षा, रोजगार के अवसर, न्याय और सम्मानजनक भविष्य देना भी उतना ही आवश्यक है।

नक्सलवाद के खिलाफ लड़ाई का स्थाई समाधान केवल हथियारों से संभव नहीं है। बंदूक हिंसा को रोक सकती है, लेकिन किसी विचार का जवाब केवल बंदूक नहीं हो सकती। गलत विचारधारा का मुकाबला तथ्य, शिक्षा, संवाद, विकास और लोकतांत्रिक मूल्यों से ही किया जा सकता है।

इसलिए दिमागी नक्सलवाद की बहस को बेहद सावधानी से समझने की जरूरत है। हिंसा को महिमामंडित करने वाली विचारधारा का विरोध होना चाहिए, लेकिन लोकतांत्रिक असहमति के लिए जगह भी बनी रहनी चाहिए। भारत की ताकत उसकी विविधता और लोकतांत्रिक व्यवस्था में है। बंदूकधारी नक्सली के सामने सुरक्षा बल खड़े हो सकते हैं, लेकिन समाज के भीतर फैलने वाली हिंसक विचारधारा का मुकाबला पूरे समाज को मिलकर करना होगा। इस लड़ाई में सबसे प्रभावी हथियार बंदूक नहीं, बल्कि शिक्षा, रोजगार, न्याय, सत्य, संवाद और लोकतंत्र हैं।

- नोएडा

# नयी पहली, दिमागी नक्सल

भावनाओं विचारों को अभिव्यक्त करने में ध्वनियों की विविधता एक उत्कृष्ट माध्यम है। ध्वनियों ने शब्दों के रूप ग्रहण किए, और देश काल की विभिन्नताओं के अनुरूप, विभिन्न भाषाओं का सृजन होता गया।

किसी भी भाषा के शब्द, कितने भी निर्मित हुए हों, उनकी कोई ना कोई सीमा तो है ही, किंतु प्रकृति अवयवों की बहुरूपता तो असीम ही है, अतः हर शब्द विशेष वस्तु अथवा क्रिया का प्रतीक होने से, उसके प्रयोजन को समझने के लिए उसकी पारिस्थितिकीय उत्पत्ति को ध्यान में रखकर ही सटीक तौर पर समझा जा सकता है।

उदाहरण के लिए यदि पानी की मांग हुई है, तो हमें समझने की जरूरत होती है कि यह पानी पीने के लिए मांगा जा रहा है, किसी अनुष्ठान के लिए, किसी निर्माण कार्य के लिए, अथवा कृषि की सिंचाई के लिए मांगा जा रहा है, कार्य की आवश्यकता के अनुरूप ही पानी की मात्रा और गुणवत्ता में भी परिवर्तन हो जाता है।

ध्यान देने की आवश्यकता होती है, कि शब्द मात्र ही, अर्थ को स्पष्ट नहीं कर पाता है, शब्द के ध्वनि स्रोत के चरित्र को समझ कर ही शब्द के सही अर्थ को समझा जा सकता



सतीश चन्द्र 'सतीश'

है। अब दिमागी नक्सल, शब्द युग्म सत्ता के शीर्ष मुख से, इस रूप में ध्वनित हुआ है की हथियारबंद नक्सल से तो देश को मुक्त कर दिया है, और अब दिमागी नक्सल से निपटना है, इसे समझने के लिए, पहले हम नक्सल शब्द पर ही जब विचार करते हैं, तो यह शब्द नक्सलबाड़ी गांव के नाम की घटना विशेष के संदर्भ को समाहित किए देश के आदिवासी बहुल क्षेत्रों में उसी जैसी घटनाओं का प्रतीक बन गया था।

घटना क्या थी, जमींदारी उन्मूलन कानून के अनुसार जो जमीनें, जो भी किसान हल चलाकर उन पर खेती कर रहा था, वह जमीन उसके स्वामित्व पर सरकारी खातों में दर्ज की जाएगी, कागजों में तो किसानों के नाम दर्ज हो गए, किंतु पूर्व जमींदारों ने उन पर अपना कब्जा नहीं छोड़ा था। अब किसानों ने चीन के क्रांतिकारी नेता माओत्सेतुंग से प्रेरणा ले उनपर कब्जा करने के लिए जो रास्ता अपनाया वह रास्ता हिंसात्मक कार्यवाही का था, यह कार्रवाई सर्वप्रथम नक्सलबाड़ी गांव में की गई थी, जिसके परिणामस्वरूप तत्कालीन राजसत्ता ने जनतांत्रिक देश में हर समस्या के निराकरण हेतु लागू किए जा चुके संविधान के उल्लंघन करने के अपराध में, दमनात्मक कार्यवाहियां शुरू की कुछ गिरफ्तार कर जेल में डाल दिए गए, कुछ दूसरे



क्षेत्रों में जाकर वहाँ भी उसी हिंसात्मक तरीके से जमीनों पर कब्जा करवाने के प्रयास करने लगे, तो ये नक्सली पहचान लिए, विस्तृत आदिवासी क्षेत्रों में सक्रिय होते रहे.

यहाँ प्रश्न यह उठता है कि जो हजारों साल से वन क्षेत्रों में रहते आए हैं, और वे वनोंपजों से ही अपना जीवन निर्वाह करते आए हैं उनकी जीवन शैली भी प्रकृति से सामंजस्य के अनुरूप ही ढल चुकी है, तो कृषि जोतने वाले भूमिहीनों को कृषि स्वामित्व का जब अधिकार दिया गया है, तो इन आदिवासियों को भी तो गुजारे योग्य जंगल की जमीन के टुकड़े मिलना चाहिए थे, इसके लिए अनेकों सामाजिक कार्यकर्ताओं के संघर्षों के बाद २००६ में वन अधिकार कानून को बना दिया गया था, किंतु उसका क्रियान्वयन कभी नहीं किया गया, आदिवासियों को औद्योगिक विकास के नाम पर विस्थापित किया जाता रहा है किंतु उनके पुनर्वास के तौर पर दसवें हिस्से को भी समायोजित नहीं किया गया है. तो आदिवासियों के जीवनोचित अधिकारों के सवाल तो मानवता के हर दृष्टिकोण से उचित है, ठीक है कि हिंसात्मक तरीके पर लगाम लगाई जाना चाहिए, किंतु आदिवासियों की समस्याओं के समाधान भी तो किए जाने चाहिए. इन सवालों के लिए जिन्होंने शांतिपूर्ण भी संघर्ष किए हैं, अथवा वैचारिक प्रश्न राजसत्ता के सम्मुख रखे हैं, उन्हें अर्बन नक्सल घोषित कर जेलों में डाल दिया गया है,

आदिवासियों के साथ ही जिन्होंने दलितों के गहन उत्पीड़नों को रोकने हेतु भी अपनी कलम चलाई है, आनंद तेल तुम्बडे जैसे सूक्ष्म भौतिकी के वैज्ञानिक को भी नहीं बख्शा गया है. यह कदम क्या यही सिद्ध नहीं कर रहे हैं, की मौजूदा सत्ता वंचितों, उत्पीड़ितों, और सामाजिक राजनैतिक विकृतियों के निराकरण हेतु उठने वाली हर आवाज का दमन ही करने पर उतारू है, वह यह मानकर चल रही है कि उसकी बनाई नीतियां अप्रश्नेय है, और पूरे देश को सिर झुकाए उन्हें स्वीकार करना चाहिए.

केंद्रीय सत्ता की नीति, सत्ता और संपत्ति का तेजी से केंद्रीय करण कर देने की है. इस नीति के अनुसार चंद लोगों को ही शासन प्रशासन करने का अधिकार हो, और चंद हाथों में देश की सारी संपत्ति केंद्रित की जा सके. राजसत्ता का संवैधानिक दायित्व था कि देश का हर १४ वर्ष तक का बच्चा मुफ्त शिक्षा प्राप्त करें, जिस उद्देश्य से ही इतने प्राथमिक विद्यालय खोलने की योजना बनी थी, कि हर बच्चे को शिक्षा पाने हेतु एक किलोमीटर से अधिक दूर ना जाना पड़े, शिक्षा उच्च स्तर पर भी इतनी सस्ती की जाए कि वंचित समाज के किशोरों युवाओं की भी सामर्थ्य उनमें प्रवेश लेने की हो सके. प्रतिभाएं अमीर घरों

में ही पैदा नहीं होती है, रामानुजन तो झोपड़ियों में भी जन्म लेते रहे हैं.

हो क्या रहा है, शिक्षा सस्ती तो कल्याणकारी दृष्टिकोण के साथ राजसत्ता के संरक्षण से ही संभव है, जिसे निजी हाथों में सौंपकर उसे बाजार का माल बनाया जा रहा है, निजी तो सारे व्यवसाय ही अधिकाधिक मुनाफा बटोरने हेतु ही किए जाते हैं, तो शिक्षा दिन व दिन महंगी होती जा रही है, इसके साथ ही सार्वजनिक क्षेत्र के शिक्षा संस्थानों के भी बजट में कटौती कर उसे भी बहुसंख्या की पहुँच से दूर किया जा रहा है, इसका कारण क्या राजकोष में हो रही कमी ही है, यदि ऐसा ही है, तो शिक्षा तो किसी भी समाज के विकास का आधार होती है, तो फिर विकास विकास का शोर मचाने के विज्ञापन पर ही प्रतिवर्ष हजारों करोड़ रुपए खर्च करके क्यों बर्बाद किए जा रहे हैं. क्यों केंद्रीय शासकीय सुदृढ़, काम चलाऊ भवनों के होते हुए, बीसियों हजार करोड़ रुपयों से नए भवनों का निर्माण किया जा रहा है. इसका अर्थ है कि शिक्षा के लिए, राजकोषीय कमी ना होकर, राजसत्ता की नीति ही बहुसंख्यक, श्रमजीवी, निम्न मध्यम वर्ग आबादी से शिक्षा की रोशनी समेट लेने की है, राज सत्ता समझती है कि संपत्ति के स्वामित्व में ही राजसत्ता की संप्रभुता निहित होती है। सामंती व्यवस्था का जनतंत्र में रूपांतरण, मात्र सिंहासन के एकाधिकार को ही ध्वस्त करने के लिए नहीं हुआ है, संपत्ति का स्वामित्व भी समग्र जनता के हाथों में आया है. सार्वजनिक संपत्ति जितनी अधिक होगी, राजसत्ता की संप्रभुता भी जनता के हाथों में उतनी ही अधिक होगी, और इसका बिलोम, सत्ता की शक्ति जनता के हाथों से निकल, उन हाथों की मुष्ठियों में कसती जाएगी, जिनके हाथों में सार्वजनिक संपत्ति खिसकती जाएगी.

जनता की शक्तियों का जब अपहरण होगा, तो उसके दिमागी हिस्से तो शासन के समक्ष हाथ तौबा मचाएंगे ही. शासन को यही हाथतौबा तो रोकने के लिए दिमागी वर्ग को नक्सली कहना पड़ रहा है. इसके लिए शिक्षा की राह दुष्कर और दुर्लभ बनाना ही तो अभी होम्योपैथिक दवा की खुराक है. शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार की मांग, भ्रष्टाचार, कदाचार, को रोकने, सामाजिक भाईचारा को क्षति पहुंचाने वाले नफरती कार्यों, आदिवासियों, दलितों, महिलाओं के प्रति हो रहे अपराधों पर लगाम लगाने के लिए, स्वतंत्र चेता दिमाग वाले तो शासन से जनतांत्रिक आंदोलनों द्वारा भाषणों, लेखों से अपने प्रयास जारी रखेंगे ही, ऐसे वर्ग हिंसा का प्रतीक नक्सल शब्द दिमागी से जोड़ना, और उन्हें ठीक करने की प्राथमिकता की राष्ट्र के सर्वोच्च मंच से घोषणा करना कहाँ तक उचित है.. ।

-फर्रुखाबाद

# दिमागी नक्सली, नया वर्ग तैयार

नये भारत में एक नया वर्ग सामने आया।

अब तक भारत बहुत सी मुश्किलों से सामना करता आया जैसे आतंकवाद, पंजाब में स्वर्ण मंदिर में आतंक, नेताओं द्वारा सरकारी पैसों को हड़पना (इसमें सभी को) शामिल नहीं किया है गरीबी, किसानों द्वारा तंगी से आत्महत्या, गुंडागर्दी, घूसखोरों आदि की समस्याओं में उलझा भारत दूसरे विषयों के बारे में सोच ही नहीं पा रहा

था। बताई गई सभी बातों से हम पूर्णता मुक्त नहीं हुए पर इस पर बहुत कुछ गतिविधियां हुई और काफी सम्भली भी और इस पर कार्य किया जा रहा है किंतु अब दिमागी नक्सली कहे जाने वाला जो नया वर्ग तैयार हो रहा है वह चिंता का विषय है।

मैं किसी व्यक्ति विशेष के बारे में नहीं कह रही, पर प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने दिमागी नक्सली उस वर्ग को कहा है जो अपने हाथों में बंदूक लिए नहीं रहता लेकिन गाहे बगाहे वैचारिक रूप से हमलावर की भूमिका अपनाता है। अभी कुछ समय से जो एक नया वर्ग तैयार हो रहा है उसे दिमागी नक्सली कहा जा रहा है। लोकतंत्र का मूल तत्व ही असहमति है अर्थात् जब से देश आजाद हुआ विपक्ष द्वारा बहुत से कार्यों का विरोध किया जाता रहा है किंतु दिमागी नक्सली के रूप में जो विरोधी हैं वे सामने ना आकर पीठ पीछे हमले करते हैं।

एक समय था जब आम आदमी को अपनी बात कहने का भी हक छीना जा रहा था। ऐसे समय नागरिकों ने प्रतिरोध किया जिसके परिणामस्वरूप शासन को झुकना पड़ा। यह वह समय था जब दबाव के कारण बहुत सी गलत नीतियों और गलत नियमों को सरकार को स्वीकार करना पड़ता था।

भारत इतना विशाल देश है पर स्वतंत्रता के बाद भी सत्ता की गलियों से अपनी पेट पूजा ही होती रही। स्थिति ऐसी बन रही है कि लाल किले से प्रधानमंत्री द्वारा दिमागी नक्सली नाम दिया गया तो यह दिमागी नक्सली कौन है? यह जानना आवश्यक हो गया किंतु यह जानने से पहले हमें यह भी जानना है की हथियारी नक्सली का तो सफाया हुआ और हो रहा है पर यह दिमागी नक्सली मौके की तलाश में हैं कि



**डॉ. सीमा अग्रवाल**

कब हिंसा व अराजकता का माहौल हो और वह अपना उल्लू सीधा करें।

दिमागी नक्सली लोगों का बस एक ही काम है- सही को गलत साबित करना। उन्हें देश की चिंता नहीं। वे अच्छे-भले कार्य को बिगाड़ने की फिराक में रहते हैं। यह दिमागी नक्सली हथियार वाले नक्सली से भी अधिक खतरनाक है क्योंकि इनको पहचानना बहुत कठिन है और यह हर जगह घुसे बैठे हैं।

कुछ तथा कथित लोगों ने 'दिमागी नक्सली' को 'जेन जी' से जोड़ना चाहा, पर जैसी कि आशंका है जेन जी के नवयुवकों और नवयुवतियों को भड़काकर अपने पक्ष में विरोध करने को उकसाया गया और यह प्रक्रिया आगे बढ़ाई जा रही है जिसे कहा तक उचित कहा जा सकता है? चूंकि 'जेन जी' के सदस्य अभी इतने परिपक्व नहीं हुए हैं कि भला-बुरा अच्छी तरह समझ सकें। उनकी उम्र ही ऐसी है कि उनको बहलाना-फुसलाना आसान है किंतु इनमें जोश भी अधिक होता है अतः वह लालचवश कही-अनकही बातों में फंस जाते हैं। अंततोगत्वा सावधानी बरतना आवश्यक है। खासतौर से माता पिता और अभिभावकों का यह कर्तव्य हो जाता है कि वे अपने बच्चों को सही दिशा दिखाएं और देश में उपद्रवकारियों को हावी होने से इन्हें बचाएं।

-भोपाल



# नई समस्या: दिमागी नक्सल

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी जी ने १५ अगस्त २०२६ को अपने स्वतंत्रता दिवस के भाषण में लाल किले की प्राचीर से कहा देश में बंदूक और हथियार उठाने वाला नक्सलवाद अब अपनी अंतिम सांसें गिन रहा है और लगभग समाप्त हो चुका है लेकिन दिमागी नक्सल या वैचारिक रूप से नक्सलवादी सोच रखने वाले लोग अभी भी सक्रिय हैं।

प्रधानमंत्री के इस वक्तव्य का सीधा सा अर्थ यह है कि दिमागी नक्सली वे लोग हैं जो सीधे हथियार नहीं उठाते लेकिन वैचारिक रूप से माओवाद का समर्थन करते हैं, लोकतांत्रिक व्यवस्था और संविधान को चुनौती देते हैं तथा युवाओं को भड़काकर समाज में अराजकता और अशांति फैलाने का मौका तलाशते हैं।

मोदी जी के भाषण में दिमागी नक्सल का तात्पर्य उनका हिंसक, विघटनकारी व अराजकतावादी ताकतों विषयकर नवयुवाओं की ओर संकेत है जो चिंता का विषय है क्योंकि युवा शक्ति किसी भी देश के विकास एवं सुरक्षा के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण तत्व समझा जाता है। यदि यह तत्व अपनी राह से भटक गया तो देश को बहुत बड़ा नुकसान हो सकता है। ऐसी स्थिति में देश के सभी जागरूक नागरिकों को इस बात के लिए चिंता करना स्वाभाविक है क्योंकि यह बहुत महत्वपूर्ण संकेत है जिसे अनदेखा नहीं किया जा सकता।

यह तो सच है कि यदि शत्रु सामने से वार करता है तो उसे किसी भी हद तक रोक कर बचा जा सकता है परंतु यदि उसने कुछ अलग रास्ते बनाकर रखे हैं, जो अदृश्य हैं उनको देख पाना और समझ पाना जटिल है। ऐसी स्थिति में देश को खतरनाक शत्रुओं से निपटना बहुत मुश्किल हो जाएगा। इसलिए जिसके दिमाग में देश के प्रति विघटनकारी शक्तियों का समावेश हो चुका है उनसे सावधान रहने की आवश्यकता है क्योंकि यह हमारी युवा पीढ़ी के लिए तो खतरनाक है ही साथ ही देश के लिए भी बहुत बड़ा खतरा हो सकता है।

देश के विकास के लिए युवाओं को सही मार्गदर्शन और विवेकपूर्ण निर्णय लेने की क्षमता का विकास होना बहुत आवश्यक है और यह क्षमता हमारे देश के वरिष्ठ नागरिकों को एक योजनाबद्ध तरीके से पहल करने



शशिप्रभा शास्त्री  
'शशि' भोपाल

वाला निर्णय लेने की आवश्यकता है। हम इस कार्य में समाज के प्रति अपनी नैतिक जिम्मेदारी समझते हुए इन विभिन्न प्रकार के झूठे प्रचार प्रसार को रोकने के लिए कुछ कदम उठाएँ तो इस समस्या से निपटा जा सकता है।

हमारे युवा देश की ताकत हैं। इनका भटकाव कोई भी भारतवासी सहन नहीं कर सकता और इस महत्वपूर्ण जिम्मेदारी में अपना संपूर्ण सहयोग देने की क्षमता रखता है।

आज के समय में लोग वोट पाने के लिए किसी भी हद तक जा सकते हैं लेकिन उनका यह मंसूबा कभी सफल नहीं हो सकता क्योंकि हर भारतवासी अपने देश के युवाओं को भटकने नहीं देगा और उनका पूरी तरह से सहयोग और मार्गदर्शन करने के लिए सदा तैयार रहेगा।

हम यह अच्छी तरह समझते हैं कि भारत का युवा पूर्ण जागरूक है और उसे किसी भी तरह से बहलाया या फुसलाया नहीं जा सकता, लेकिन एक जिम्मेदार नागरिक होते हुए हम इस संकेत को समझकर अपने घर परिवार से ही शुरुआत कर बच्चों को सही मार्गदर्शन और अच्छे संस्कारों का आदर्श स्थापित कर उनको विवेकपूर्ण निर्णय लेने की क्षमता का विकास करने में समर्थ बनायें जिससे हमारा देश मजबूत बन सके।

- अवधपुरी, भोपाल



# विफलताओं पर पर्दा डालने का नया अस्त्र: 'दिमागी नक्सलवाद'

किसी भी देश की पहचान केवल उसके आर्थिक विकास या भौतिक संसाधनों से नहीं होती। किसी राष्ट्र की वास्तविक पहचान उसके संस्कार, संस्कृति, शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, न्याय व्यवस्था, शांति, सामाजिक समरसता, पर्यावरण और नागरिकों के जीवन की गुणवत्ता से होती है। जो देश सत्य, अहिंसा, शांति और मानवीय मूल्यों के साथ निरंतर प्रगति करता है, वहां नागरिकों के भीतर भी आत्मविश्वास, संतोष और समृद्धि का भाव विकसित होता है।



■ मनोज चतुर्वेदी  
'आनंद'

यदि वर्तमान परिस्थितियों का गंभीरता से अध्ययन किया जाए तो अनेक क्षेत्रों में असमानता, अव्यवस्था और चुनौतियां दिखाई देती हैं। इन परिस्थितियों पर प्रश्न उठाना किसी व्यक्ति का अपराध नहीं, बल्कि एक जागरूक नागरिक का लोकतांत्रिक दायित्व है।

प्रश्न पूछते लोग और जिम्मेदारी से बचने की प्रवृत्ति- लोकतंत्र में जनता केवल मतदाता नहीं होती; वह शासन व्यवस्था की वास्तविक आधारशिला होती है। जनता को यह अधिकार है कि वह शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, न्याय, कानून-व्यवस्था, पर्यावरण, भ्रष्टाचार और सार्वजनिक सुविधाओं के संबंध में प्रश्न पूछे।

समस्या तब उत्पन्न होती है जब जनता के प्रश्नों का उत्तर देने के बजाय प्रश्न पूछने वालों की नीयत पर ही प्रश्नचिह्न लगाने का प्रयास किया जाए। आज कई बार ऐसा प्रतीत होता है कि व्यवस्था की विफलताओं, प्रशासनिक कमियों अथवा नीतियों के प्रभाव पर सवाल उठाने वालों को 'दिमागी नक्सलवाद' जैसे शब्दों से संबोधित कर मूल प्रश्न से ध्यान हटाने का प्रयास किया जाता है। किसी भी विचार या असहमति को केवल एक विशेष नाम दे देने से वह समाप्त नहीं हो जाती। लोकतंत्र में विचारों का उत्तर विचारों और तथ्यों से दिया जाना चाहिए।

शिक्षा: अधिकार से व्यवसाय तक- किसी भी राष्ट्र

की प्रगति का सबसे मजबूत आधार शिक्षा है। यदि शिक्षा व्यवस्था कमजोर होती है तो उसका प्रभाव आने वाली कई पीढ़ियों पर पड़ता है। आज शिक्षा का एक बड़ा हिस्सा निजी क्षेत्र में व्यवसाय का रूप ले चुका है। बढ़ती फीस और अन्य खर्चों के कारण सामान्य परिवारों के लिए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्राप्त करना कठिन होता जा रहा है। दूसरी ओर, शासकीय शिक्षण संस्थानों में भवन, शिक्षकों, संसाधनों और अन्य मूलभूत सुविधाओं की कमी की शिकायतें सामने आती रहती हैं।

स्थिति का दूसरा पक्ष और भी गंभीर है। बड़ी संख्या में युवा शिक्षा प्राप्त करने के बाद रोजगार की तलाश में भटकते हैं। जिन्हें निजी क्षेत्र में रोजगार मिलता भी है, उनमें से अनेक लोगों को अपनी योग्यता और क्षमता की तुलना में कम वेतन तथा अधिक कार्यभार का सामना करना पड़ता है। यदि देश का युवा शिक्षित होकर भी रोजगार के लिए संघर्ष करता रहे तो यह केवल व्यक्ति की समस्या नहीं, बल्कि पूरी व्यवस्था के सामने खड़ा प्रश्न है।

न्याय व्यवस्था : न्याय की प्रतीक्षा एक चुनौती- न्याय व्यवस्था किसी भी लोकतांत्रिक समाज की रीढ़ होती है। आम नागरिक को यह विश्वास होना चाहिए कि यदि उसके साथ अन्याय हुआ है तो वह कानून के माध्यम से न्याय प्राप्त कर सकता है लेकिन न्यायालयों में लंबित मामलों, रिक्त पदों, न्यायिक संसाधनों और प्रक्रियात्मक जटिलताओं से जुड़े प्रश्न लंबे समय से चर्चा का विषय रहे हैं। ऐसे अनेक मामले होते हैं जिन्हें प्राथमिक या स्थानीय स्तर पर ही संवाद, प्रशासनिक हस्तक्षेप अथवा उचित व्यवस्था के माध्यम से सुलझाया जा सकता है, लेकिन वे लंबे समय तक न्यायिक प्रक्रिया में उलझ जाते हैं। न्यायालयों द्वारा जनहित में दिए गए आदेशों के प्रभावी क्रियान्वयन का प्रश्न भी महत्वपूर्ण है। यदि आदेश जारी होने के

बाद भी उनका पालन समय पर न हो तो आम नागरिक के मन में व्यवस्था के प्रति निराशा उत्पन्न होना स्वाभाविक है।

कानून-व्यवस्था बनाए रखने के लिए अनेक विभाग और संस्थाएं काम करती हैं लेकिन जब उनके बीच समन्वय का अभाव दिखाई देता है और प्रत्येक विभाग जिम्मेदारी दूसरे पर डालने लगता है, तब पीड़ित व्यक्ति के लिए न्याय प्राप्त करना और कठिन हो जाता है।

**स्वास्थ्य:** भवन नहीं, व्यवस्था चाहिए- स्वास्थ्य सुविधाएं नागरिकों के जीवन से सीधे जुड़ी हुई हैं। केवल अस्पतालों की इमारतें बना देना पर्याप्त नहीं है। वहां चिकित्सक, नर्सिंग स्टाफ, दवाएं, जांच की सुविधाएं, उपकरण और अन्य आवश्यक संसाधन भी उपलब्ध होने चाहिए। कई स्थानों पर सरकारी स्वास्थ्य संस्थानों में भवन तो हैं, लेकिन आवश्यक मानव संसाधन और चिकित्सकीय सुविधाओं की कमी के कारण मरीजों को कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

दूसरी ओर निजी अस्पतालों में उपचार का खर्च सामान्य परिवार की आर्थिक क्षमता से बाहर हो सकता है। गंभीर बीमारी की स्थिति में एक परिवार वर्षों की बचत गंवा सकता है या कर्ज के बोझ में दब सकता

है।

स्वास्थ्य के क्षेत्र में प्रश्न यह नहीं होना चाहिए कि अस्पताल कितने बने, बल्कि यह होना चाहिए कि उन अस्पतालों में कितने लोगों को समय पर गुणवत्तापूर्ण उपचार मिला।

**भ्रष्टाचार: व्यवस्था को भीतर से खोखला करता दीमक-** भ्रष्टाचार केवल रिश्तत लेने-देने तक सीमित समस्या नहीं है। यह व्यवस्था की गुणवत्ता, नागरिकों के विश्वास और विकास की गति को प्रभावित करता है। आम नागरिक को अनेक सरकारी सुविधाएं प्राप्त करने के लिए यदि अनावश्यक कठिनाइयों अथवा भ्रष्टाचार का सामना करना पड़े तो उसके मन में व्यवस्था के प्रति असंतोष उत्पन्न होना स्वाभाविक है। सड़कों और पुलों का निर्माण होता है, लेकिन यदि वे अपेक्षित गुणवत्ता के बिना शीघ्र ही क्षतिग्रस्त हो जाएं तो सवाल उठना स्वाभाविक है कि सार्वजनिक धन का उपयोग किस प्रकार हुआ।

भ्रष्टाचार किसी एक विभाग या क्षेत्र की समस्या नहीं है। यदि यह शिक्षा, स्वास्थ्य, निर्माण, परिवहन, प्रशासन और अन्य क्षेत्रों में जड़ें जमा ले तो धीरे-धीरे पूरी व्यवस्था को भीतर से खोखला कर देता है।

**धर्म:** आस्था का विषय या विभाजन का माध्यम?—धर्म मनुष्य की आस्था, आध्यात्मिकता और



नैतिक चेतना से जुड़ा विषय है। जब धर्म मनुष्य को सत्य, अहिंसा, प्रेम, करुणा और सद्भाव की ओर ले जाता है, तब वह समाज को जोड़ने का कार्य करता है लेकिन यदि धार्मिक भावनाओं का उपयोग केवल आयोजनों, प्रदर्शन या आर्थिक गतिविधियों तक सीमित कर दिया जाए, अथवा धर्म के नाम पर लोगों के बीच वैमनस्य और उन्माद पैदा किया जाए, तो सामाजिक सौहार्द प्रभावित होता है। धर्म को राजनीति, सामाजिक विभाजन या व्यक्तिगत लाभ का माध्यम बनाने के बजाय मानवता और सद्भाव का मार्ग बनाना आवश्यक है। हमारी व्यक्तिगत आस्था अलग-अलग हो सकती है, लेकिन समाज और राष्ट्र का विकास सामूहिक प्रयास से ही संभव है।

विकास और पर्यावरण का संतुलन- शहरों के चौक-चौराहों, बाजारों और सार्वजनिक मार्गों पर अतिक्रमण की समस्या दिखाई देती है। यातायात प्रभावित होता है और कई बार सूचना-पट्ट, यातायात संकेत तथा आवश्यक निर्देश भी अवैध होर्डिंग और अन्य अतिक्रमणों के कारण ढक जाते हैं।

विकास आवश्यक है, लेकिन विकास का अर्थ प्रकृति का विनाश नहीं हो सकता। घने जंगलों की कटाई, नदियों और तालाबों का सिकुड़ना, जलस्रोतों में प्रदूषित पानी का मिलना तथा प्राकृतिक संसाधनों का अनियंत्रित दोहन भविष्य के लिए गंभीर प्रश्न खड़े करते हैं। जब पर्यावरणीय क्षति के परिणाम प्राकृतिक आपदाओं या अन्य समस्याओं के रूप में सामने आते हैं, तब जनता यह पूछने के लिए स्वतंत्र होनी चाहिए कि पर्यावरण संरक्षण की जिम्मेदारी निभाने वाली संस्थाओं ने समय रहते क्या कदम उठाए।

रोजगार और परिवहन का प्रश्न- आज रोजगार केवल नौकरी प्राप्त करने का विषय नहीं रह गया है। यह सम्मानजनक जीवन जीने की आवश्यकता भी है। निजी परिवहन सेवाओं के बढ़ते विस्तार ने नागरिकों को कई विकल्प दिए हैं, लेकिन उनके साथ किराए, नियमन, यातायात और सार्वजनिक परिवहन की गुणवत्ता जैसे प्रश्न भी जुड़े हैं। यदि शासकीय परिवहन व्यवस्था सुगम, सुरक्षित, पर्याप्त और प्रभावी हो तो नागरिकों को कम लागत पर आवागमन की सुविधा मिल सकती है तथा निजी वाहनों पर निर्भरता और सड़कों पर यातायात का दबाव भी कम किया जा सकता है।

इन विषयों पर प्रश्न उठाने वाले नागरिकों को जवाब मिलना चाहिए कि सार्वजनिक परिवहन को

बेहतर बनाने के लिए क्या योजनाएं हैं और उनका क्रियान्वयन किस स्तर तक हुआ है।

करदाता नागरिक का अधिकार- निजी क्षेत्र में काम करने वाला व्यक्ति दिन-रात मेहनत करता है। वह प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से विभिन्न प्रकार के करों का भुगतान करता है। स्वाभाविक रूप से उसके मन में यह अपेक्षा रहती है कि उसके योगदान के बदले उसे बेहतर सड़क, शिक्षा, स्वास्थ्य, सुरक्षा, परिवहन और अन्य सार्वजनिक सुविधाएं प्राप्त हों। जब नागरिक लगातार कर देता है, लेकिन उसके जीवन में सार्वजनिक सुविधाओं का अपेक्षित सुधार दिखाई नहीं देता, तब उसका प्रश्न करना स्वाभाविक है।

प्रश्न पूछने वाले नागरिक को विरोधी समझने के बजाय उसके प्रश्न का उत्तर देना लोकतांत्रिक व्यवस्था की मजबूती का संकेत है।

महिलाओं की सुरक्षा और न्याय- नारी के प्रति अपराध किसी भी सभ्य समाज के लिए गंभीर चिंता का विषय हैं। अपराधों के अनेक कारण हो सकते हैं और उनका समाधान भी बहुआयामी होना चाहिए। लेकिन एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि अपराध होने के बाद पीड़ित को समय पर न्याय मिले और अपराधी के विरुद्ध कानून के अनुसार कार्रवाई हो।

यदि किसी मामले में कार्रवाई में अनावश्यक देरी होती है तो समाज के भीतर असुरक्षा और निराशा की भावना बढ़ सकती है। इसलिए कानून का प्रभावी क्रियान्वयन और पीड़ितों को समय पर न्याय उपलब्ध कराना अत्यंत आवश्यक है।

शांतिपूर्ण आवाज को 'नक्सलवाद' कहना समाधान नहीं- जब छात्र-छात्राएं अपनी समस्याओं को लेकर शांतिपूर्ण और अहिंसक तरीके से अपनी आवाज जिम्मेदार लोगों तक पहुंचाते हैं, तो उनकी बात सुनी जानी चाहिए। किसी आंदोलन या विरोध के संबंध में आरोप-प्रत्यारोप हो सकते हैं, लेकिन यदि नागरिकों की मांग शिक्षा, रोजगार, सुविधाओं या प्रशासनिक जवाबदेही से संबंधित है तो मूल प्रश्न पर चर्चा आवश्यक है।

युवाओं की आवाज को दबाने के बजाय उनके प्रश्नों को समझना चाहिए। यदि उनकी मांग उचित है तो समाधान की दिशा में कदम बढ़ाना चाहिए और यदि किसी मांग के संबंध में तथ्यात्मक भ्रम है तो संवाद के माध्यम से उसे स्पष्ट किया जाना चाहिए। लोकतंत्र की सुंदरता यही है कि असहमति को भी संवाद का अवसर माना जाए।

नारों से नहीं, परिणामों से बनेगा राष्ट्र- आज संचार के साधनों ने विचारों को कुछ ही क्षणों में लाखों लोगों तक पहुंचाने की क्षमता प्रदान कर दी है। सोशल मीडिया, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया और प्रिंट मीडिया के माध्यम से कही गई बात तेजी से समाज तक पहुंचती है। इसलिए केवल बड़े-बड़े दावे और वादे पर्याप्त नहीं हैं। वास्तविक महत्व इस बात का है कि उन दावों और वादों का धरातल पर कितना प्रभाव दिखाई देता है। नागरिकों को नारों से अधिक परिणाम चाहिए। बेहतर विद्यालय चाहिए, योग्य शिक्षक चाहिए, युवाओं के लिए रोजगार चाहिए, सुलभ स्वास्थ्य सेवाएं चाहिए, समय पर न्याय चाहिए, सुरक्षित सड़कें चाहिए, स्वच्छ नदियां और तालाब चाहिए तथा भ्रष्टाचार से मुक्त एवं जवाबदेह व्यवस्था चाहिए।

शांति केवल शब्द नहीं, जीवन-पद्धति है- आज मनुष्य अपने सपनों को पूरा करने के लिए परिवार और अपनों से दूर जा रहा है। संयुक्त परिवारों का स्वरूप बदल रहा है और एकल परिवारों का विस्तार हो रहा है। आर्थिक प्रतिस्पर्धा और जीवन की भागदौड़ बढ़ती जा रही है। ऐसे समय में हमें स्वयं से यह प्रश्न करना चाहिए कि वास्तविक शांति कहाँ है। शांति केवल किसी भाषण में बोले जाने वाला शब्द नहीं है। शांति आत्मचिंतन, संयम, सहयोग, प्रेम, सद्भाव और परस्पर सम्मान से जन्म लेती है। प्रगति के लिए प्रयास आवश्यक हैं, लेकिन हर व्यक्ति की क्षमता, परिस्थिति और प्राथमिकताएं अलग-अलग होती हैं। इसलिए सकारात्मक चिंतन, मानसिक संतुलन और मानवीय संबंधों को भी जीवन की प्रगति का हिस्सा मानना आवश्यक है। हमें स्वयं का सहयोग करना है और दूसरों का भी सहयोग करना है। विवादों से दूरी बनानी है और सत्य, ईमानदारी, अहिंसा तथा सद्भाव के मार्ग पर चलने का प्रयास करना है।

जनता को भ्रम नहीं, जवाब चाहिए- किसी भी लोकतांत्रिक समाज में जनता को अपने प्रतिनिधियों और जिम्मेदार संस्थाओं से प्रश्न पूछने का अधिकार है। यदि कोई व्यक्ति सरकारी विद्यालयों के भवनों की बेहतर व्यवस्था की मांग करता है, रिक्त पदों पर शिक्षकों की नियुक्ति की बात करता है, महंगी होती शिक्षा पर प्रश्न उठाता है, स्वास्थ्य सुविधाओं की कमी की ओर ध्यान दिलाता है, न्याय में देरी पर सवाल करता है, पर्यावरण संरक्षण की मांग करता है या भ्रष्टाचार के विरुद्ध आवाज उठाता है, तो उसके प्रश्नों का उत्तर तथ्यों और कार्यवाही के माध्यम से दिया जाना चाहिए।

किसी भी असहमति को केवल एक विशेष विचारधारा या मानसिकता का नाम दे देने से मूल समस्या समाप्त नहीं होती। यदि वास्तव में कोई व्यक्ति हिंसा या कानून-विरोधी गतिविधियों में संलग्न है तो कानून अपना काम करे। लेकिन शांतिपूर्ण ढंग से नागरिक समस्याओं पर प्रश्न उठाना लोकतांत्रिक अधिकार और नागरिक जिम्मेदारी का हिस्सा है।

समय बदल रहा है। सूचना का विस्तार हो रहा है। जनता पहले की तुलना में अधिक जागरूक है। नागरिक अब केवल यह नहीं सुनना चाहते कि क्या किया जाएगा; वे यह भी देखना चाहते हैं कि वास्तव में क्या किया गया। देश को नारों से नहीं, बल्कि ईमानदार प्रयासों, मजबूत संस्थाओं, जवाबदेही, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, रोजगार, बेहतर स्वास्थ्य व्यवस्था, सुलभ न्याय, स्वच्छ पर्यावरण और सामाजिक सद्भाव से मजबूती मिलेगी। परिवार मजबूत होंगे तो समाज मजबूत होगा। समाज मजबूत होगा तो राष्ट्र मजबूत होगा।

हमें यह समझना होगा कि प्रश्न पूछना राष्ट्र-विरोध नहीं है। व्यवस्था में सुधार की मांग करना अराजकता नहीं है। सत्य, न्याय, अहिंसा, प्रेम और सद्भाव की बात करना किसी विभाजन का आधार नहीं हो सकता।

जो लोग 'मानसिक नक्सलवाद' जैसे शब्दों का प्रयोग करते हैं, उन्हें यह आत्मचिंतन करना चाहिए कि जिन नागरिकों पर ऐसे आरोप लगाए जा रहे हैं, उनके प्रश्नों में कितनी वास्तविकता है और उन प्रश्नों के समाधान के लिए जिम्मेदार संस्थाओं ने क्या किया है। अंततः किसी भी भ्रमजाल की उम्र बहुत लंबी नहीं होती। समय और समाज दोनों परिणाम मांगते हैं।

आवश्यकता इस बात की है कि हम एक-दूसरे पर आरोप लगाने के बजाय अपनी-अपनी नैतिक जिम्मेदारियों को समझें। नागरिक अपने कर्तव्यों का निर्वहन करें और शासन तथा प्रशासन अपनी संवैधानिक एवं सार्वजनिक जिम्मेदारियों का।

सड़क पर अनुशासन से चलना हो, सार्वजनिक संपत्ति की रक्षा करनी हो, पर्यावरण बचाना हो, शिक्षा को बेहतर बनाना हो, स्वास्थ्य सुविधाओं को मजबूत करना हो, रोजगार के अवसर बढ़ाने हों या न्याय को सुगम बनाना हो—हर क्षेत्र में सामूहिक प्रयास आवश्यक है। राष्ट्र का मान नारों से नहीं, हमारे कर्मों से बढ़ेगा। सत्य से, न्याय से, अहिंसा से, ईमानदारी से, सद्भाव से और एक-दूसरे के सहयोग से ही एक शांत, समृद्ध और विकसित समाज का निर्माण संभव है।

-भोपाल

# विवादास्पद आक्षेप

आजकल हमारे देश में नक्सली शब्द का जोर जोर से प्रयोग किया जा रहा है और वातावरण में देश के अराजकता का भाव दिखाई देने लगा है।

सही माने में नक्सली कौन है?

दिमागी नक्सली शब्द का प्रयोग हाल में राजनीतिक चर्चाओं में किया गया है। जब से प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने इस शब्द का इस्तेमाल अपने भाषण में जो कि उन्होंने १५ अगस्त २०२६ को दिया था उसमें किया था। जो कि एक वैचारिक सोच और मानसिकता के संदर्भ में था, जब से इस पर आए दिन कहीं ना कहीं समाचारों में चर्चा सुनाई देती है।

दिमागी नक्सली में वह लोग आते हैं जो हथियार वाले नक्सलवाद के कमजोर होने के बाद उभरे किंतु खुलकर मैदान में नहीं आए। कितने ही नक्सलियों ने आत्मसमर्पण किया था, तो फिर भी हिंसा और अराजकता और विरोध के नए वैचारिक रास्ते तलाशते हैं, यह एक मानसिकता है जो कि देश के विकास में बाधा डालना चाहती है। सेना के सम्मान पर सवाल उठाना तथा न्यायपालिका या लोकतांत्रिक संस्थानों पर अविश्वास पैदा करना है।

दिमागी नक्सली शब्द का किसी कानूनी व्यवस्था पर



शीला श्रीवास्तव

किसी प्रतिबंधित संगठन से इसका सीधे तौर पर कोई संबंध नहीं है। विपक्ष का कहना है कि सरकार अपनी नाकामियों को छुपाने के लिए यह तरीका अपना रही है। सरकार और सत्तारूढ़ दल के नेताओं के अनुसार यह शब्द उन लोगों की विचारधारा के लिए प्रयोग किया जाता है जो जंगलों में हथियार लेकर नहीं घूमते हैं बल्कि वैचारिक मानसिक रूप से नक्सली या माओवादी सोच का समर्थन करते हैं समाज को भटकाने का काम करते हैं। सरकार की नीतियों और विकास के कार्यों के खिलाफ भ्रम फैलाने और देश में अराजकता का माहौल बनाते हैं।

हम अगर ध्यान से देखें तो देश में किसान आंदोलन और छात्र आंदोलन का रूप दिमागी नक्सलवाद को ही बतलाता है, जिसकी वजह से राजनैतिक विवाद और आलोचनाओं का जन्म हो रहा है। इससे छात्रों का नुकसान अधिक हो रहा है। छात्रों को उल्टा सीधा पढ़ाकर गलत काम करवा लेते हैं और बाद में अगर जांच होती है तो अपना पल्ला झाड़ देते हैं, अलग हो जाते हैं। छात्र बेचारे उल्टा सीधा कदम उठा लेते हैं जैसे आत्महत्या आदि।

इस तरह के आंदोलन में कुछ प्रोफेसर कुछ शिक्षक कुछ



एनजीओ के लोग भी हवा देते हैं। पेपर बहुत सीक्रेट पद्धति से बनता है फिर लीक कैसे हुआ?

कुछ छात्रों को हॉस्टल में रहना पसंद नहीं आता क्योंकि हॉस्टल के कुछ नियम कायदे होते हैं। ऐसे छात्र मनचाही जगह रहने के लिए चुनते हैं क्यों? दुर्घटनाएं तो कभी भी घटित हो सकती हैं इसके लिए दोषा रोपण करना कहां तक सही है?

सरकार हमेशा छात्रों के भलाई के बारे में ही सोचती है पर उसकी विचारधारा पर गहराई से सोचने का विषय है।

अभी देश के कुछ युवा नेता लोग इस छात्र आंदोलन के रुकने का नाम ही नहीं लेने दे रहे नए-नए एजेंडे बनाए जा रहे हैं नई-नई शर्तें रखी जा रही हैं, छात्रों को सरकार के विरोध में खड़ा कर रही है जबकि मोदी सरकार छात्रों के भविष्य को लेकर बहुत संवेदनशील है और उनके ही हित के कार्य कर रही है उनसे बात भी करना चाहती है परंतु आंदोलन में कुछ युवा नेता ऐसे लोगों को शामिल कर रहे हैं जिनको छात्र जीवन का अनुभव तक नहीं है और आंदोलन में शोर मचाकर सरकार के कार्यों का विरोध करने का काम कर रही है। इस सोच को क्या कहा जा सकता है?

आपको याद होगा एक बार कांग्रेस की सरकार थी उस वक्त आरक्षण के विरोध में छात्रों ने आंदोलन किया था और यहां तक कि कितने छात्रों ने आत्मदाह किया था, ट्रेनों रोकी की थी काफी तोड़फोड़ हुई थी, दिल्ली में तो कुछ एरिया में कर्फ्यू लगा दिया गया था। तब नेता मौन क्यों थे? आज



सरकार की नीतियों पर वे उंगली उठा रहे हैं अपनी सोच को नक्सली सोच के घेरे में क्यों ला रहे हैं? यह सोच पूरे विश्व के लिए घातक सिद्ध हो सकती है, समय रहते सचेत होने की आवश्यकता है। हमारे छात्र किसी विदेशी नीति के प्रलोभन में ना आ जाए जिससे बाद में उन्हें भविष्य में पछताना पड़े।

हमारे छात्र देश के भावी नागरिक हैं, इनमें से ही कोई भविष्य में राष्ट्रपति बनेगा, प्रधानमंत्री बनेगा। इसलिए सरकार का विरोध करने के बजाय उसकी नीतियों को सकारात्मक सोच के माध्यम से ध्यान देने की आवश्यकता है। हमारे लिए देश प्रथम है देश का विकास सबका विकास है जो कि सबके साथ से ही संभव हो सकता है। सत्ता की लालसा में अपनी सोच को नक्सली सोच से दूर रखने की आवश्यकता है। अभी देश की फिलहाल की घटना जिसमें जेन जी आंदोलन के बाद हुए छात्र चुनाव हुए हैं, जिसका परिणाम देखकर हमारी सरकार ने कहा के दिल्ली विश्वविद्यालय का जनादेश पूरे भारत के युवा छात्रों के मन का प्रतिबिंब है। देश का युवा 'राष्ट्र प्रथम' की विचारधारा के साथ खड़ा है। कहा जा रहा है कि झूठ की गूंज, सच्चाई की हार जबकि हमेशा सच की जीत होती है। आखिर सच्चाई क्या है सरकार सही है अथवा छात्र सही है यह प्रश्न अभी भी बना हुआ है? दिमाकी नक्सलीय सोच के घेरे में आता है।

-भोपाल

## कविता

### हे काकरोच, तुम महान हो!

हे काकरोच,  
तुम महान हो।  
फुंफकारने वाले  
बड़े अजगर  
डर गए तुम्हारी  
हुंकार से।  
जो हँसते थे,  
तुम्हारे सपनों की  
शव-यात्राओं पर,  
आज भयभीत हैं  
तुम्हारे सपनों की  
श्रृंखलाओं से।  
हे काकरोच,  
तुम महान हो।



रीतेश कुमार दुबे



# अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, असहमति का अधिकार और दिमागी नक्सली?

भारतीय लोकतंत्र की सबसे बड़ी शक्ति केवल चुनाव नहीं है, बल्कि नागरिक को अपनी बात कहने, प्रश्न पूछने, सरकार की आलोचना करने और असहमति व्यक्त करने का अधिकार है। संविधान के अनुच्छेद १९(१)(ए) ने प्रत्येक नागरिक को वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का मौलिक अधिकार दिया है। यह अधिकार किसी सरकार, राजनीतिक दल अथवा सत्ता में बैठे व्यक्ति की कृपा से प्राप्त नहीं होता; यह नागरिक का संवैधानिक अधिकार है। इसी अधिकार के कारण लोकतंत्र केवल बहुमत का शासन नहीं रहता, बल्कि वह विचारों, प्रश्नों, तर्कों और असहमति का शासन बनता है।



वल्लभ किशोर  
शर्मा

सर्वोच्च न्यायालय ने भी स्पष्ट किया है कि इंटरनेट के माध्यम से अभिव्यक्ति अनुच्छेद १९(१)(ए) के संरक्षण में आती है और उस पर लगाए जाने वाले प्रतिबंध संविधान के अनुच्छेद १९(२) में निर्धारित आधारों के अनुरूप होने चाहिए। इसलिए डिजिटल युग में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का प्रश्न केवल अखबार, पत्रिका, सभा या मंच तक सीमित नहीं रहा। आज सोशल मीडिया, ऑनलाइन समाचार पोर्टल, स्वतंत्र डिजिटल पत्रकारिता और नागरिक पत्रकारिता भी लोकतांत्रिक संवाद का महत्वपूर्ण हिस्सा हैं।

सूचना प्रौद्योगिकी नियमों तथा ऑनलाइन सामग्री को नियंत्रित करने वाली व्यवस्थाओं को लेकर लंबे समय से न्यायालयों में प्रश्न उठते रहे हैं। २०२३ में बनाए गए आईटी नियम (IT Rules) के उस संशोधन को, जिसके अंतर्गत सरकार से संबंधित ऑनलाइन सामग्री के लिए फैक्ट-चेकिंग तंत्र का प्रावधान किया गया था, बंबई उच्च न्यायालय ने २०२४ में निरस्त कर दिया। इससे एक महत्वपूर्ण संवैधानिक प्रश्न सामने आया—सरकार स्वयं यह अंतिम निर्णायक कैसे हो सकती है कि उसके संबंध में प्रकाशित कोई सूचना सत्य है या असत्य?

पत्रकारिता की स्वतंत्रता इसी कारण अभिव्यक्ति के अधिकार का महत्वपूर्ण विस्तार है। पत्रकार सरकार के प्रचारक नहीं होते और न ही उनका काम किसी राजनीतिक दल का विरोध करना है। उनका मूल दायित्व सत्ता से प्रश्न पूछना, तथ्यों की जांच करना और जनता तक सूचना

पहुंचना है। यदि किसी पत्रकार ने कानून तोड़ा है तो उसके विरुद्ध कानून के अनुसार कार्रवाई होनी चाहिए; लेकिन केवल सरकार की आलोचना, नीतियों पर प्रश्न या असुविधाजनक तथ्य सामने रखने को अपराध मान लेना लोकतांत्रिक व्यवस्था के लिए गंभीर प्रश्न पैदा करता है।

मानवाधिकार संगठनों ने हाल के वर्षों में भारत में पत्रकारों, सामाजिक कार्यकर्ताओं और सरकार के आलोचकों पर आपराधिक कानूनों के प्रयोग को लेकर चिंताएँ व्यक्त की हैं। ह्यूमन

राइट्स वॉच और एमनेस्टी इंटरनेशनल ने पत्रकारों और असहमति रखने वाले लोगों के विरुद्ध आपराधिक मुकदमों, ऑनलाइन सामग्री हटाने तथा डिजिटल प्रतिबंधों के अनेक मामलों को दर्ज किया है। विपक्ष के अधिकार का प्रश्न इससे अलग नहीं है। लोकतंत्र में विपक्ष कोई बाधा नहीं, बल्कि सत्ता के उत्तरदायित्व की संवैधानिक आवश्यकता है। सरकार को बहुमत शासन करने का अधिकार देता है, लेकिन बहुमत आलोचना से ऊपर नहीं उठता।

सर्वोच्च न्यायालय ने शांतिपूर्ण प्रदर्शन को भी नागरिकों के मौलिक अधिकारों से जोड़ा है। न्यायालय ने कहा है कि शांतिपूर्ण और व्यवस्थित ढंग से अपनी शिकायतों को सामने रखना तथा अपनी आवाज सुनाने का प्रयास अनुच्छेद १९(१) ए, १९(१) बी और १९(१) सी से जुड़ा अधिकार है। साथ ही न्यायालय ने यह भी स्पष्ट किया है कि इन अधिकारों पर सार्वजनिक व्यवस्था आदि के संबंध में कानूनसम्मत और उचित प्रतिबंध लगाए जा सकते हैं। यहीं राज्य की शक्ति की वास्तविक परीक्षा होती है। शांतिपूर्ण आंदोलन को नियंत्रित करना और हिंसक गतिविधि को रोकना दो अलग-अलग परिस्थितियाँ हैं। पुलिस को कानून-व्यवस्था बनाए रखने का अधिकार और दायित्व है, लेकिन नागरिकों के साथ बल का प्रयोग आवश्यकता, वैधता और अनुपातिकता के सिद्धांतों के अधीन होना चाहिए। किसी आंदोलनकारी के विचार से असहमति राज्य को उसके नागरिक अधिकारों से वंचित करने का स्वतः अधिकार नहीं देती। आंदोलनकारी को परोक्ष रूप से दिमागी नक्सली में कहना उचित प्रतीत नहीं होता।

—नरसिंहगढ़

# दुष्ट मानसिकता का द्योतक है दिमागी नक्सल

नक्सल शब्द सशस्त्र क्रूरता के साथ आतंकित करने की दुष्ट मानसिकता का द्योतक है। व्यवहारिक दृष्टि से नक्सल और दिमाग दोनों ही शब्द एक दूसरे के विरोधाभासी शब्द हैं।

या यूँ कहा जाए कि दिमाग का दुरुपयोग करना या विक्षिप्त आचरण करना ही नक्सलवाद है।

दिमाग (मस्तिष्क या ब्रेन) मानव शरीर का सबसे जटिल और महत्वपूर्ण अंग है जो हमारे केंद्रीय तंत्रिका तंत्र का मुख्य केंद्र होता है। जो शरीर के सभी अंगों से जानकारी लेकर उन्हें नियंत्रित और संचालित करता है।

दिमाग का मुख्य कार्य विचार और भावनाएं सोचना, सीखना, यादें सहेजना और भावनाओं को महसूस करना। शारीरिक नियंत्रण- चलना, बोलना, देखना, सुनना और अन्य सभी गतिविधियों को निर्देश देना। दिमाग की अनिवार्य क्रियाएं हैं- सांस लेना, दिल की धड़कन और शरीर के तापमान को नियंत्रित करना। शरीर का इतना महत्वपूर्ण अवयव का जो दुरुपयोग करता है, वही व्यक्ति दिमागी नक्सली हो सकता है।

जब से राजनीति सिद्धांतविहीन, विचारविहीन हो गई है, तब से राजनेताओं की भाषा अमर्यादित हो गई। दिमाग का सही उपयोग करने वाला व्यक्ति सदा अपने विवेक जागृत रखेगा। जिसका विवेक जागृत उसकी भाषा, आचार, विचार, आचरण सभ्यता और शुद्धता होगी। विवेक को जागृत रखने वाला व्यक्ति अपने शब्दों को तोल मोल के मुंह से बाहर निकलेगा।

यह समझ प्रकट होती है निम्न दोहे में-

बोली एक अनमोल है, जो कोई बोले जानि।

हिये तराजू तौलि के, तब मुख बाहर आनि ॥

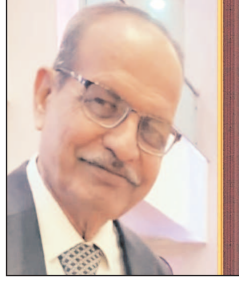
अर्थात् वाणी अनमोल है। जो बोलना जानता है, वह हर बात को दिल के तराजू में तोलकर ही मुँह से बाहर आने देता है।

शब्दों की शक्ति का महत्व निम्न दोहे में प्रकट होता है-

शब्द संभाल के बोलिये, शब्द के हाँथ न पाँव।

एक शब्द औषद करे, एक शब्द करे घाव॥

शब्द के द्वारा घाव होने का भी आशय दो तरह से परिभाषित किया जाता है। एक आशय शब्दों के प्रयोग यथा- रूढ़ियों, अंधश्रद्धा, अन्याय, अत्याचार, भ्रष्टाचरण और अभद्रता के विरुद्ध निर्भीकता से किया जाता है।



अशिकांत गुप्ते

दूसरा विपरीत आशय है आतंक फैलाना, हिंसा करना, अपमान करना यहां तक कि गाली-गलौज करने के लिए भी शब्दों का प्रयोग किया जाता है।

व्यक्ति को अपने मुँह से शब्दों का उच्चारण करने के पूर्व अपने पद, प्रतिष्ठा का भान रखना चाहिए, साथ ही अभद्रता करते समय स्थान के समय के महत्व को भी समझना चाहिए। सबसे महत्वपूर्ण बात है कि जब कोई व्यक्ति दूसरों पर

उंगली उठाता है, तब वह यह भूल जाता है कि उसकी तीन उंगलियां उसी पर उठ रही हैं।

देश के किसी भी प्रांत में चुनाव होने वाले हों? चुनाव चाहे, नगर निगम या विधानसभा, के हो या पूरे देश में लोकसभा के चुनाव हों? चुनाव संपन्न होने की आधिकारिक घोषणा के कुछ माह पूर्व स्वयं को राजनैतिक विश्लेषक समझने वाले व्यक्ति अपना विश्लेषण प्रस्तुत करने में तत्परता दिखाते हैं। कोई किसी प्रांत की स्टोरी करने में स्वयं को विशेषज्ञ समझता है, कोई अन्य किसी प्रांत की स्टोरी करने में स्वयं को निपुण समझता है। प्रायः ये विश्लेषक चुनाव के पूर्व संबंधित प्रांत की भौगोलिक स्थिति के साथ सामाजिक या जातिय समीकरण पर ज्यादा फोकस करते हैं। किस राजनैतिक दल को कौन सी जाति या समाज के वोट ज्यादा प्राप्त होने की संभावना है, किस दल में किस जाति विशेष पर अपना प्रभुत्व रखने वाले सक्रिय कार्यकर्ता कितने हैं। किस दल के कौन से नेता की कौन से समाज या जाति पर पकड़ मजबूत है।

उपर्युक्त विश्लेषण पढ़ने के बाद कुछ व्यवहारिक प्रश्न उपस्थित होते हैं? एक यह कि आगामी विधानसभा चुनावों में क्या दिमागी नक्सल वाला मुद्दा भी मतदाताओं के समक्ष रखा जाएगा? क्या इक्कीसवीं सदी में भी हम जातियता या सामाजिकता की परिधि में ही स्वयं को जकड़ कर रखेंगे? क्या किसी भी दल के लिए जाति और सामाजिक वर्चस्व रखने वाले ही व्यक्ति को ही चुनाव में उम्मीदवार बनाया जाएगा? वैसे तो चुनाव में उम्मीदवारी प्राप्त करने के लिए सभी दलों में अनेक लोग उम्मीद लगाए बैठते हैं, लेकिन अंततः उम्मीदवार वही व्यक्ति बनता है जिस पर दल के हाई कमांड की अनुकम्पा होती है, और उम्मीदवार बनने के लिए धनबल और बाहुबल होना भी योग्यता मानी जाती है।

बहरहाल चर्चा हो रही है, विश्लेषकों की? विश्लेषक चुनाव पूर्व अपने विश्लेषण में जातिय और सामाजिक वोटों

की ही बात करते हैं।

जबकि व्यवहारिकता का तकाजा तो यह है कि किसी भी निर्वाचन क्षेत्र का जातीय या सामाजिक आधार पर विश्लेषण करते हैं, महत्वपूर्ण नहीं है? महत्वपूर्ण है उस निर्वाचन क्षेत्र की समस्याएं कितनी हैं और कितने वर्षों से हैं?

निर्वाचन क्षेत्र में कौन व्यक्ति कितनी बार विजयी हुआ है, यह बताने के साथ उस व्यक्ति ने अपने निर्वाचन क्षेत्र की कितनी समस्याएं के हल की है?

चुनाव में जीत प्राप्त करने के बाद निर्वाचित जनप्रतिनिधि अपने निर्वाचन क्षेत्र में प्रत्यक्ष कितनी बार रूप से दर्शन दिए हैं?

क्या निर्वाचन क्षेत्र की सड़कें तंदरुस्त हैं? क्या वहां पानी की समस्या नहीं है? वहां के नागरिकों को शुद्ध पानी मिल रहा है? वहां की जनता कितने वर्षों से मूलभूत समस्याओं से जूझ रही है? निर्वाचन क्षेत्र में सरकारी स्कूलों की क्या स्थिति है? क्या स्कूलों में वितरित होने वाले मध्याह्न भोजन में सर्फ नमक रोटी ही परोसी जा रही है? स्कूलों में अध्यापक समय पर तो क्या? कभी स्कूल में उपस्थित भी होते हैं? स्कूलों में अध्यापक बच्चों के साथ कैसा व्यवहार करते हैं? स्कूलों में विद्यार्थियों के लिए वाश रूम भी है या नहीं?

विकास के नाम पर हो रहे भ्रष्टाचार पर कथित विश्लेषक मौन क्यों?

क्या लोकतंत्र में सिर्फ चुनाव जीतना ही येनकेन प्रकारेण उम्मीदवार का लक्ष्य होना चाहिए? चुनाव पूर्व उम्मीदवार की संपत्ति और चुनाव में विजयी उम्मीदवार की संपत्ति में बेतहाशा इजाफा कैसे होता है?

क्या किसी भी दल में उम्मीदवारों का चयन लोकतांत्रिक तरीके से होता है?

ऐसे अनेक अहम प्रश्न हैं? क्या ऐसे तमाम प्रश्नों पर विश्लेषक गम्भीरता से सोचेंगे?

ताजा प्रश्न यह है कि लाल किले से प्रधानमंत्री ने जो नया जुमला या नया मुहावरा दिमागी नक्सल के रूप में गढ़ा है, क्या ये मुद्दा भी प्रत्याशियों द्वारा मतदाताओं के समक्ष परोसा जाएगा? आज बहुत दिनों बाद मैं मेरे साहित्यिक मित्र सीताराम जी से मिलने उनके घर गया। सीतारामजी सन १९६६ में प्रदर्शित फिल्म 'देवर' के लिए गीतकार आनंद बख्शी द्वारा रचित गीत गा रहे थे-

बहारों ने मेरा चमन लूट कर खिजा को ये इल्जाम क्यों दे दिया  
किसी ने चलो दुश्मनी की मगर इसे दोस्ती नाम क्यों दे दिया  
मुझे क्या पता था कभी इश्क में रकीबों को कासिद बनाते नहीं  
खता हो गई मुझ से कासिद मेरे, तेरे हाथ पैगाम क्यों दे दिया

गीत की उक्त पंक्तियों को सुनने के बाद मैंने सीतारामजी से कहा- पिछले बारह वर्षों से विज्ञापनों में पतझड़ को बहार

बताया जा रहा है।

सीतारामजी ने मेरे कथन को सुनने के बाद मुझ से कहा, पिछले बारह वर्षों नहीं पतझड़ को बहार बताने का विज्ञापन पिछले २४ वर्षों से चल रहा है। २४ वर्ष पूर्व तो विज्ञापनों में एक मॉडल को नमूने के तौर प्रस्तुत कर प्रचार किया गया था। मॉडल की इतनी स्तुति की गई कि विपक्षी भी झांसे में आ गए। लेकिन यह मॉडल खंडहर पर रंग रोगन था। प्रचार करने वालें जानते हैं कि देश की जनता कितनी भोली है। भोली जनता विज्ञापन को सच समझ बैठी और नतीजा निम्न पंक्तियों जैसा हो गया-

मैं समझा नहीं ऐ मेरे हम-नशीं  
सजा ये मिली है मुझे किस लिए  
कि साकी ने लब से मेरे छीन कर  
किसी और को जाम क्यों दे दिया

अंधा बांटे रेवड़ी अपने अपनों को ही दे।

चमत्कार देखो, कोरोना महामारी के दौर में भी दोस्तों की आमदनी बेतहाशा बढ़ गई।

आमजन को पांच किलों अनाज खैरात समझकर जरूर बांटा गया। वैसे जाम को छीना नहीं आमजन के लिए भी देशी और विदेश की दुकानें प्रत्येक शहर कस्बे में हर एक दो किलो मीटर पर मुहैया की गई।

'ना खाऊंगा ना ही खाने दूंगा' यह स्लोगन जिस व्यवस्था प्रचारित किया उस व्यवस्था ने जिस राज्य में नशा बंदी की उस राज्य में तो नशे की उपलब्धता प्रचुर मात्रा में है, ऐसा पीने वालें दावे के साथ कहते हैं?

जब सामंती व्यवस्था का एकाधिकार बढ़ता है, तब तानाशाह प्रवृत्ति फलती फूलती है। तानाशाह प्रवृत्ति कट्टरता को बढ़ावा देती है। कट्टरता धर्मांधता का पर्याय बन जाता है। धर्मांधता हिंसक उन्माद में तब्दील हो जाती है।

जिन लोगों में हिंसक उन्माद हावी हो जाता है, वे कुंठित मानसिकता से ग्रस्त हो जाते हैं। कुंठा, कूररता में बदल जाती है। ऐसी मानसिकता को तानाशाही व्यवस्था प्रश्रय देती है, और जुल्म को जायज ठहराने की प्रवृत्ति पनपती है। तब ऐसी व्यवस्था के विरुद्ध अहिंसक क्रांति जन्म लेती है। इस बात की तस्दीक करती निम्न पंक्तियां प्रस्तुत हैं।

यह पंक्तियां रची है, पाकिस्तान के क्रांतिकारी शायर हबीब जालिब ने-

दीप जिसका मुहल्लत ही में जले  
चंद लोगों की खुशियों को लेकर चले  
वो जो साए में हर मसलहत के पले  
ऐसे दस्तूर को सुबह बेनूर को  
मैं नहीं मानता, मैं नहीं मानता

-इंदौर

# मानसिक अवधारणा है दिमागी नक्सल

दिमागी नक्सल वह वैचारिक और मानसिक अवधारणा है जिसे रेखांकित करते हुए प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने १५ अगस्त २०२६ को अपने स्वतंत्रता दिवस के भाषण में उजागर किया था।

साधारण शब्दों में कहें तो जो बौद्धिक लोग स्वयं को बुद्धिजीवी मानने हैं और जनमानस के शुभचिंतक के रूप में दर्शाते हैं, वे सत्ता पक्ष और समर्थकों के विरुद्ध में हिंसा या हथियार नहीं उठाते लेकिन नक्सलवादी विचारधारा, अलगाववाद और व्यवस्था-विरोधी नकारात्मक सोच का समर्थन खुलेआम करते हैं, उन्हें दिमागी नक्सल कह सकते हैं।

इस शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग प्रधानमंत्री द्वारा अपने भाषण में स्वतंत्रता दिवस की मौके पर किया गया। यह लोग जो दिमागी तौर पर राष्ट्र, देश के खिलाफ अपने विचार व्यक्त करने को ही अपनी शान समझते हैं। यह खुद को बुद्धिजीवी मानने के साथ-साथ आम जनता विशेष कर अल्पसंख्यकों, पिछड़े वर्ग, पिछड़ी जनजातीय लोगों, आदिवासी समुदायों का समर्थन करने का ढोंग करते हैं और मानव अधिकार के परचम तले अपनी बात को खुलकर रखते हैं। इनका मकसद सरकार का विरोध करना चाहे वह कुछ भी हो, लोगों को सरकार के खिलाफ भड़काना होता है।

यह जंगल के नक्सलवाद से भी अधिक खतरनाक है क्योंकि जंगल के नक्सलवादी तो हथियारों से युद्ध करता है जिसे हतियार द्वारा मार गिराया जा सकता है। फौज या पुलिस द्वारा एक सुव्यवस्थित योजना बनाकर उसे पड़कर नष्ट किया जा सकता है। वह मुख्य धारा से दूर जंगलों, गांव जैसे बक्तसर, उत्तर में जैसे कश्मीरी आतंकी, दूर दराज पूर्व के जंगलों में नक्सलवाद का होना आम बात मानी जाती है परंतु यह बुद्धिजीवी लोग जो अधिकतर सरकार की नीतियों का विरोध करते हैं चाहे फिर वह कांग्रेस, लेफ्टिस्ट वामपंथी, सीपीआई, सीपीएम, या अन्य किसी भी राजनीतिक दल से जुड़े हुए लोग जिनको सरकार की हर नीति, हर कार्य गलत ही लगता है और उसका विरोध करना ही इनका एकमात्र लक्ष्य है। वे अपने विचारों, धारणा से ऐसा नरैटिव सेट करते हैं कि सरकार तो जनता के खिलाफ ही काम कर रही है। ऐसे लोगों को दिमागी नक्सली कहा जाता है।



दीप्ति मेहता

यह दिमागी नक्सली या दिमागी बीमार हैं या नहीं यह तो मैं नहीं जानती परंतु यह हमारे युवा पीढ़ी 'सो कॉल्ड जेन जी' और भोले-भाले लोगों को भड़काने का काम बखूबी कर रहे हैं और अंतरराष्ट्रीय मंचों पर भी अपनी आवाज़ को पुरजोर बुलंद करके प्रस्तुत करते हैं। वे सरकार का विरोध जताने का एक भी मौका नहीं छोड़ते चाहे वह कोई साहित्यिक मंच, राजनीतिक या मनोरंजन कार्यक्रम, कोई भी अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भारत की निंदा करना सरकार की नीतियों का विरोध करना, सरकार की हर कार्य को जनहित के विरोध में प्रस्तुत करना जिससे भारत की और सरकार की छवि धूमिल हो यही इनका एकमात्र प्रयास है। ...और यह सब यह मानव अधिकार की छतरी के नीचे खड़े होकर करते हैं। वे स्वतंत्रता दिवस पर यह

## दिमागी नक्सल किसे कहते हैं?

जिसे वंदे मातरम से तकलीफ हो,  
उसे दिमागी नक्सल बोलते हैं

जो कश्मीरी पंडितों के नरसंहार के बारे में  
कभी बात न करे उसे  
दिमागी नक्सल बोलते हैं

जिसके लिए अफजल गुरु और बुरहान एक  
भटका हुआ नौजवान हो उसे  
दिमागी नक्सल कहते हैं

जो भारत में रहकर "भारत तेरे टुकड़े होंगे"  
के नारे लगाए उसे  
दिमागी नक्सल बोलते हैं

जो air strike और surgical strike  
का सबूत मांगे उसे  
दिमागी नक्सल बोलते हैं

जिनके लिए दिल्ली का प्रोटेस्ट स्टूडेंट्स प्रोटेस्ट था,  
और जिन्हें झारखंड प्रोटेस्ट के बारे में बोलने के  
भी शर्म आ रही है वो दिमागी नक्सल हैं

एक ही सवाल उठाते हैं कि क्या हम वास्तव में स्वतंत्र हैं?

मेरा मानना है कि यदि हम स्वतंत्र ना होते तो क्या आपको यह सवाल भी पूछने का अधिकार होता?

असली वजह तो यह है कि तुम जैसे नक्सली भी बेखौफ बेफिक्र अपनी बात अलग-अलग मंच पर बोल रहे हैं चाहे वह टेलीविजन हो, कोई साहित्यिक मंच, किसी पॉडकास्ट या न्यूज़ चैनल पर आप अपनी बात को बोलकर बिना डरे रख पा रहे हैं इससे अधिक स्वतंत्रता का प्रमाण और क्या हो सकता है।

तुम लोग देश में निर्भीक घूम रहे हो, तुम्हें जान-माल का कोई खतरा नहीं अपना जो भी कार्य, व्यवसाय हैं, उसमें तुम को सरकार, देश का पूरा सहयोग प्राप्त है। सरकार की योजनाओं और सुविधाओं का लाभ उठाने में जरा भी नहीं हिचकिचाते। बीते वर्ष तो इन्हें राष्ट्रीय पुरस्कारों से भी सम्मानित किया गया है। पूर्ववर्ती सरकार द्वारा उनके हिसाब से काम करती थी। यही दिमागी नक्सली रात में आपको किसी डिस्को, पब, बार में नशे में धुत मिलेंगे। उनके अपने कोई नैतिक मूल्य या सिद्धांत तो है नहीं। उनका एक ही काम है- सरकार के खिलाफ नरिक्टिव सेट करना। दिमागी नक्सली लोगों का ऐजेडा अलग ही पहचाना जा सकता है। उन्हें सरकार का विरोध करना, सरकार के खिलाफ षड्यंत्र करना और आम जन समूह में रहते हुए अपने बात को रखना, कॉलेज यूनिवर्सिटी में यह पढ़ने-पढ़ाने नहीं, युवा पीढ़ी को

गुमराह करना आदि बस इनका एकमात्र उद्देश्य है।

हर बाहरी, विदेशी ताकत जो भारत के खिलाफ है उससे हाथ मिलाना, सहयोग करना और साथ देना ही इनका एकमात्र काम है, चाहे वह कम्युनिस्ट चीन, कट्टरपंथी पाकिस्तान, नक्सलवादी श्रीलंका या बांग्लादेश अथवा कोई भी और देश क्यों ना हो। इनका मकसद भारत की जड़ों को काटना, कमजोर करना और उन्हें अंदर से खोखला करना है। भारत जैसा विशाल वटवृक्ष जिसकी शाखाएं पूरब, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण चारों ओर फैली हुई है, जो एकता में अखंडता का ज्वलंत उदाहरण है, उसे पूरी तरह से तोड़ देना इनका लक्ष्य है।

बहुत जरूरी है कि भारत की जनता जाग जाए और उनके मंसूबों, इरादों को समझे और उन्हें इसमें कामयाब न होने दे। यह जो भारत के वटवृक्ष को भीतर से दीमक की तरह खोखला करने का प्रयास कर रहे हैं। इन्हें सिरे से नकारते कर बाहर फेंक देना चाहिए। जिसके लिए बहुत आवश्यक है कि पहले इन्हें अच्छे से पहचान लिया जाए, इन्हें आईडेंटिफाई किया जाए और इनके मनसुबों को कामयाब न होने दिया जाए। खुद भी सावधान रहे और दूसरों को भी सचेत करें उनके इरादों के बारे में। यह ना देश के प्रति वफादार हैं ना देश के लोगों के प्रति। इन नक्सली, दिमागी नक्सलियों को मुंहतोड़ जवाब देना ही हर नागरिक का कर्तव्य है।

-भोपाल



# विवाद का विषय है दिमागी नक्सली

‘दिमागी नक्सली’ शब्द सुनते ही मन में एक स्वाभाविक प्रश्न उठता है कि आखिर दिमागी नक्सली कौन है? क्या वह व्यक्ति जो जंगल में बंदूक लेकर घूमता है, या वह जो किसी विचारधारा का समर्थन करता है? क्या सरकार की आलोचना करने वाला व्यक्ति दिमागी नक्सली है, या किसी हिंसक विचारधारा का समर्थन करने वाला? इन प्रश्नों के उत्तर तलाशना इसलिए जरूरी है, क्योंकि यह शब्द आज राजनीतिक और सामाजिक बहस का हिस्सा बन चुका है।



सुफिया जैदी

सबसे पहले यह समझना आवश्यक है कि ‘दिमागी नक्सली’ भारत के किसी कानून में परिभाषित शब्द नहीं है। यह कोई आधिकारिक कानूनी श्रेणी भी नहीं है। इसलिए किसी व्यक्ति को केवल इस नाम से संबोधित कर देना अपने-आप में उसके किसी अपराध को सिद्ध नहीं करता। किसी व्यक्ति के विरुद्ध कानूनी कार्रवाई उसके वास्तविक कृत्य, प्रमाण और लागू कानून के आधार पर ही हो सकती है।

‘दिमागी नक्सली’ शब्द का अर्थ हथियार उठाने वाले नक्सली से अलग बताया जाता है। राजनीतिक बहस में इसका इस्तेमाल उन लोगों के लिए किया जाता है जिन पर माओवादी या नक्सली विचारधारा को वैचारिक समर्थन देने, हिंसा को उचित ठहराने या अलगाववादी विचारों का समर्थन करने के आरोप लगाए जाते हैं।

यहाँ एक महत्वपूर्ण अंतर समझना जरूरी है। सरकार की आलोचना करना और हिंसक उग्रवाद का समर्थन करना एक ही बात नहीं है। लोकतंत्र में सरकार, प्रशासन, नीतियों और व्यवस्था की आलोचना करने का अधिकार नागरिकों को प्राप्त है। कोई पत्रकार सरकार से प्रश्न पूछे, कोई लेखक किसी नीति पर असहमति व्यक्त करे या कोई नागरिक शांतिपूर्ण ढंग से विरोध करे, तो केवल असहमति के आधार पर उसे नक्सली या ‘दिमागी नक्सली’ कहना उचित नहीं माना जा सकता। दूसरी ओर, यदि कोई व्यक्ति वास्तव में किसी हिंसक संगठन का समर्थन करता है, हिंसा को बढ़ावा देता है या प्रतिबंधित संगठन की गतिविधियों में सक्रिय रूप से शामिल होता है, तो उसके कार्यों की जाँच कानून के अनुसार होनी चाहिए। केवल किसी पर आरोप लगा देना और आरोप को प्रमाणित अपराध मान लेना, दोनों अलग-अलग बातें हैं।

‘दिमागी नक्सली’ शब्द को लेकर विवाद का एक कारण इसकी अस्पष्टता भी है। यदि इसकी कोई स्पष्ट और प्रमाण-आधारित परिभाषा न हो, तो यह आशंका बनी रहती है कि

राजनीतिक असहमति रखने वाले लोगों पर भी इस शब्द का इस्तेमाल किया जा सकता है।

पत्रकार, शिक्षक, विद्यार्थी, लेखक या सामाजिक कार्यकर्ता यदि किसी सरकारी नीति पर सवाल उठाते हैं, तो केवल इस आधार पर उन्हें किसी हिंसक विचारधारा से जोड़ देना लोकतांत्रिक संवाद को कमजोर कर सकता है।

लोकतंत्र में विचारों से असहमति का उत्तर विचारों से दिया जाना चाहिए। यदि किसी

व्यक्ति के विचार गलत लगते हैं, तो उनके तथ्यों और तर्कों के आधार पर खंडन किया जा सकता है लेकिन किसी व्यक्ति को बिना प्रमाण किसी गंभीर आपराधिक या हिंसक विचारधारा से जोड़ देना उचित नहीं है।

इसी के साथ यह भी समझना जरूरी है कि अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अर्थ हिंसा का समर्थन करने की खुली छूट नहीं है। भारतीय कानून हिंसा, आतंकवाद और प्रतिबंधित संगठनों की गतिविधियों से जुड़े मामलों में कार्रवाई का प्रावधान करता है। इसलिए किसी व्यक्ति के विचारों और उसके वास्तविक कार्यों के बीच अंतर करना आवश्यक है।

हमें यह भी समझना होगा कि शब्दों की अपनी शक्ति होती है। ‘नक्सली’ शब्द भारत में दशकों से हिंसा, सशस्त्र संघर्ष और आंतरिक सुरक्षा से जुड़ा रहा है। इसलिए किसी व्यक्ति को ‘दिमागी नक्सली’ कहना उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा और सार्वजनिक छवि को प्रभावित कर सकता है। ऐसे में आरोप लगाने के बजाय प्रमाण, तथ्य और कानून को आधार बनाना अधिक उचित है।

अंततः ‘दिमागी नक्सली कौन?’ का उत्तर किसी एक व्यक्ति, वर्ग या राजनीतिक दल के नाम में नहीं खोजा जाना चाहिए। यह शब्द मुख्यतः राजनीतिक और सामाजिक विमर्श में इस्तेमाल होता है, कोई कानूनी पहचान नहीं है। इसलिए किसी व्यक्ति की पहचान केवल किसी दिए गए लेबल से नहीं, बल्कि उसके वास्तविक विचारों, वक्तव्यों, गतिविधियों और उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर समझी जानी चाहिए।

लोकतंत्र में असहमति देशद्रोह नहीं होती और हिंसा का समर्थन लोकतांत्रिक असहमति नहीं होता। इन दोनों के बीच की रेखा स्पष्ट रखना स्वस्थ लोकतांत्रिक समाज के लिए आवश्यक है। विचारों का मुकाबला विचारों से और अपराध का मुकाबला कानून से होना चाहिए। यही संतुलित दृष्टिकोण ‘दिमागी नक्सली’ जैसे विवादित शब्द को समझने का सबसे उचित रास्ता हो सकता है।

—सहारनपुर (उत्तर प्रदेश)

# बंदूक से ज्यादा खतरनाक

बंदूक वाला नक्सली जंगल में दिखता है। वहीं दिखती है, बंदूक दिखती है, इसलिए उससे लड़ा जा सकता है, परन्तु ठीक इसके विपरीत है दिमागी नक्सलवाद क्योंकि दिमागी नक्सली? वह तो हमारे बीच दिखता है। वो प्रोफेसर की कुर्सी पर बैठा है, वो न्यूज एंकर की सीट पर बैठा है, वह किताब लिख रहा है, वो नारे गढ़ रहा है। उसके हाथ में बंदूक नहीं, माइक है, कलम है, कैमरा है। इसीलिए वो बंदूक से ज्यादा खतरनाक है, आप सब जानते हैं। आखिर क्यों तो सुनिये, जाने....



रति चौबे

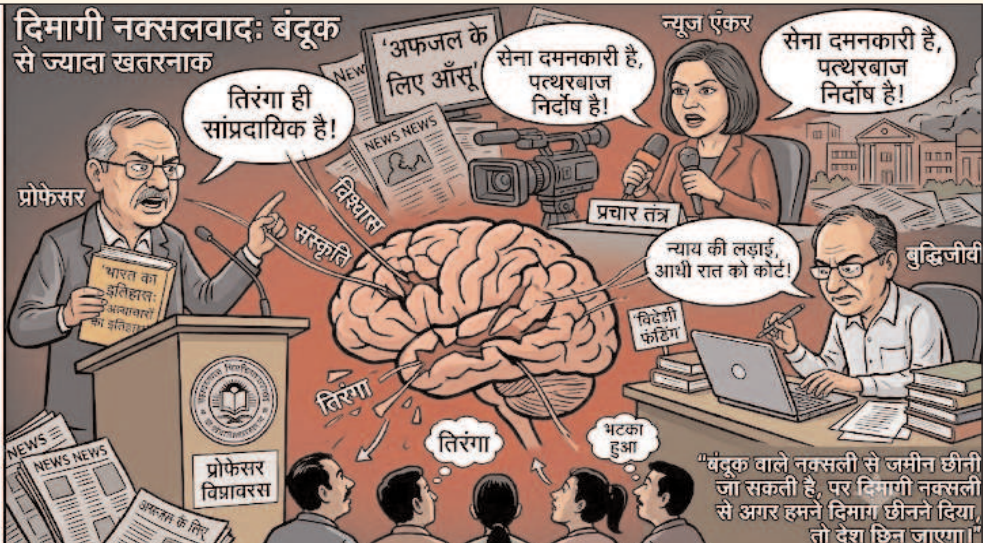
दिमागी नक्सलवाद क्या है?— ये एक विचार है जो कहता है - इस देश की हर समस्या की जड़ भारत ही है। सेना पर सवाल उठाओ, इसे मानवाधिकार कहो। देश के टुकड़े करने की बात करने वालों को बौद्धिक स्वतंत्रता कहो। आतंकियों के लिए आधी रात को कोर्ट खुलवाओ, इसे न्याय की लड़ाई कहो और नक्सली हमले में शहीद जवानों के लिए एक शब्द भी मत बोलो, इनकी यही विशेषता है कि ये सीधे बम नहीं फोड़ते, ये तो बस दिमाग में बम फोड़ते हैं।

इनका तरीका क्या है?— १. शब्दों का छल- ये पत्थरबाज को भटका हुआ नौजवान कहते हैं, और पत्थर खाने वाले जवान को दमनकारी कहते हैं। २. चुनिंदा आँसू-इन्हें अफजल के लिए आँसू आता है, लेकिन पुलवामा के शहीदों के परिवारों के लिए नहीं। ३. संस्था

पर हमला- इनका पहला हमला हमेशा भारत की संस्थाओं पर होता है - सुप्रीम कोर्ट बिक गया है, चुनाव आयोग कठपुतली है, सेना ही अपराधी है, तिरंगा ही सांप्रदायिक है। ताकि आम भारतीय का भरोसा ही टूट जाए। ४. गरीब का मुखौटा- ये एसी कमरे में बैठकर गरीब की बात करेंगे, विदेशी फंडिंग से सेमिनार करेंगे, और गाँव के उस गरीब आदिवासी को ही नक्सलियों की गोली का निशाना बनवा देंगे, जिसके नाम पर ये दुकान चला रहे हैं।

जंगल वाला नक्सली सड़क खोदता है, ताकि विकास न पहुँचे। दिमागी नक्सली दिमाग खोदता है, ताकि देश से प्रेम न पनपे। असली लड़ाई कौन सी है?— लड़ाई बंदूक से नहीं, पाठशाला से शुरू होती है। जब हमारे बच्चे को ये सिखाया जाए कि उसके देश का इतिहास ही अत्याचारों का इतिहास है, उसकी संस्कृति ही पिछड़ी है, उसके पूर्वज ही लुटेरे थे - तो वो बच्चा बड़ा होकर देश से लड़ेगा ही। इसलिए दिमागी नक्सलवाद को पहचानना जरूरी है। ये विचारों का कैंसर है। इसका इलाज बहस से नहीं, बेनकाब करने से होगा। बंदूक वाले नक्सली से जमीन छीनी जा सकती है, पर दिमागी नक्सली से अगर हमने दिमाग छीनने दिया, तो देश छिन जाएगा। यही है दिमागी नक्सलवाद जो बंदूक से ज्यादा खतरनाक भंयकर, धोखेबाज, और तीक्ष्ण होता है।

- नागपुर



# नई पीढ़ी: नया सोच और नई दृष्टि

आजकल के बच्चे बहुत अधीर हैं। रिश्तों की कद्र कहाँ रही! बहुत जल्दी प्रतिक्रिया देते हैं। मोबाइल में ही उनकी पूरी दुनिया है। और कभी-कभी तो एक वाक्य में फैसला भी सुना दिया जाता है— नई पीढ़ी बहुत असंवेदनशील हो गई है। क्या सचमुच? शायद इस प्रश्न का उत्तर हाँ या नहीं में देना ही हमारी पहली भूल होगी।



डॉ. सुनीता शर्मा

हर पीढ़ी अपने समय की संतान होती है। उसके व्यवहार में केवल उसके संस्कार नहीं, उसके समय की गति, सामाजिक परिस्थितियाँ, उपलब्ध साधन, संघर्ष और संभावनाएँ भी बोलती हैं। इसलिए किसी नई पीढ़ी को पुरानी पीढ़ी की कसौटी पर रखकर यह तय कर देना कि वह सही दिशा में है या दिग्भ्रमित—शायद उसके साथ न्याय नहीं होगा। जेन जी एक नए दृष्टिकोण की माँग करती है। हमारे और उनके बीच एक बहुत बड़ा अंतर दिखाई देता है। हमने तकनीक को आते देखा; उन्होंने तकनीक के बीच आँखें खोलीं।

हमें एक समय चिट्ठियों से भी खुशबू आती थी। वह खुशबू सचमुच कागज की थी या किसी अपने की उपस्थिति की—कौन जाने! उत्तर देर से आता था, लेकिन उस प्रतीक्षा में भी रिश्ता हमारे भीतर चलता रहता था। आज संदेश ने अपना रूप बदल लिया है। पहले प्रश्न था—चिट्ठी पहुँची होगी या नहीं? आज प्रश्न है—देख लिया, फिर जवाब क्यों नहीं दिया? कभी स्क्रीन पर typing... दिखाई देता है। तीन छोटे-छोटे बिंदु चलते हैं और मन भी उनके साथ चलने लगता है—क्या लिख रहा होगा? क्या जवाब आएगा? फिर अचानक typing... गायब। कुछ आया ही नहीं। शब्दों का संवाद हुआ नहीं, लेकिन मन में न जाने कितना संवाद हो चुका।

रिश्तों को लेकर दोनों पीढ़ियों की भाषा अलग है। हमारे समय में प्रेम था—और खूब था। बस उसे व्यक्त करने का व्याकरण अलग था। किसी का नाम आते ही आँखों का झुक जाना। किताब के पन्नों के बीच चिट्ठी छिपा देना। किसी परिचित के सामने अचानक अनजान हो जाना। अपनी सबसे प्रिय चीज़ को दुनिया की निगाह से बचाकर रखना। कई बार प्रेम को छिपाकर रखना ही उसे संभालकर रखना माना जाता था। आज किशोर की एक उँगली के स्पर्श पर लगभग पूरी दुनिया है। ज्ञान चाहिए, स्क्रीन खोलिए। भोजन चाहिए, ऑर्डर कीजिए। संगीत चाहिए, सुनिए। खरीदारी करनी है, चुनिए। किसी दूसरे देश में बैठे मित्र से बात करनी है,

कीजिए। जो सूचना कभी घंटों पुस्तकालय में खोजने के बाद मिलती थी, वह कुछ क्षणों में सामने आ सकती है। यह उपलब्धि है—और बहुत बड़ी उपलब्धि है लेकिन हर सुविधा धीरे-धीरे हमारी आदतों को भी आकार देती है। जब बहुत कुछ तत्काल उपलब्ध हो तो प्रतीक्षा कठिन लग सकती है। जब एक क्लिक में विकल्प बदला जा सकता

हो तो शायद किसी असुविधा के साथ थोड़ी देर बने रहना भी कठिन हो। प्रतिक्रिया तत्काल है।

क्या इसी कारण विचार और प्रतिक्रिया के बीच का वह छोटा-सा अंतराल भी सिकुड़ रहा है जिसमें मन कभी स्वयं से पूछता था—जो मैं अभी महसूस कर रहा हूँ, क्या उसी क्षण उस पर प्रतिक्रिया देना भी आवश्यक है? हो सकता है। लेकिन यहीं हमें रुकना होगा। क्योंकि जिस तेज़ दुनिया के लिए हम उन्हें दोषी ठहरा रहे हैं, वह दुनिया उन्होंने बनाई नहीं है। उन्हें मिली है। हमसे भी। असंवेदनशील—सचमुच?

हम कहते हैं—नई पीढ़ी असंवेदनशील है लेकिन वही किशोर देखने (seen) के बाद उत्तर न मिलने को गहराई से महसूस करता है। मित्रों के समूह से बाहर होना उसे चोट पहुँचा सकता है। किसी का अचानक संवाद बंद कर देना उसे बेचैन कर सकता है। Likes कम मिलना, किसी दूसरे की लोकप्रियता, सुंदरता या सफलता से अपनी तुलना—उसके आत्मबोध को प्रभावित कर सकती है। शायद संवेदना कम नहीं हुई है; उसके व्यक्त होने और आहत होने के बिंदु बदल गए हैं। और उसके सामने तुलना का संसार भी असाधारण रूप से बड़ा है। हम जिस उम्र में स्वयं को परिवार, पड़ोस या अपनी कक्षा के कुछ बच्चों के बीच देखते थे, आज का किशोर दुनिया भर के चेहरों, उपलब्धियों, यात्राओं और जीवन-शैलियों के बीच स्वयं को देखता है। विडंबना यह है कि वह कई बार दूसरे व्यक्ति के जीवन का संपादित, चमकदार अंश देखकर अपने पूरे जीवन का मूल्यांकन करता है।

स्क्रीन पर filter केवल चेहरे पर नहीं लगता; जीवन भी फिल्टर होकर सामने आता है। एक मुस्कुराती हुई तस्वीर के पीछे का दुःख दिखाई नहीं देता। फिर क्या जिसे हम उसकी संवेदनहीनता कह रहे हैं, वह कहीं ऐसी संवेदना तो नहीं जिसकी भाषा हम ठीक से पढ़ ही नहीं पाए?

सैकड़ों लोग हमारी तस्वीर पर प्रतिक्रिया दे सकते हैं, लेकिन उनमें कितने ऐसे हैं जिनके सामने बिना filter, बिना

emoji, बिना अपने जीवन को बेहतर दिखाए केवल इतना कहा जा सके—आज मैं ठीक नहीं हूँ।

आज का अकेलापन केवल किसी के न होने का अकेलापन नहीं है। वह बहुतों के बीच भी किसी अपने के न होने का अकेलापन हो सकता है। युवाओं में मानसिक संकट, self-harm और आत्महत्या जैसी गंभीर स्थितियों के कारण जटिल और बहुआयामी होते हैं; इन्हें केवल मोबाइल या सोशल मीडिया से जोड़ देना सरलीकरण होगा। विश्व स्वास्थ्य संगठन भी किशोर मानसिक स्वास्थ्य को एक गंभीर वैश्विक चिंता मानता है। इसलिए उनके भीतर चल रही लड़ाइयों को इस उम्र में ऐसा होता ही है कहकर नहीं टाला जा सकता। कभी जो सबसे अधिक online दिखाई देता है, वही भीतर सबसे अधिक अकेला हो सकता है। हमारी अधीरता धैर्य और उनकी अधीरता... अधीरता? लेकिन जेन जी को देखते-देखते एक बार आईना अपनी तरफ भी कर लेना चाहिए। हमारी सबसे बड़ी शिकायत है—वे बहुत जल्दी judge करते हैं। और हम?

दिलचस्प बात यह है कि हमने अपने और उनके लिए कई बार अलग-अलग शब्दावली भी बना रखी है। हम अपनी बात की पैरवी करें—तर्क। वे अपनी बात की पैरवी करें—बहस। हम अपनी पसंद पर टिकें—अनुभव से निकला निर्णय। वे टिकें—जिद। हम हस्तक्षेप करें—चिंता। वे अपने जीवन में हस्तक्षेप रोकें—असम्मान। हम किसी संबंध से दूरी बनाएँ—आत्मसम्मान। वे बनाएँ—रिश्ते निभाना नहीं आता। हमारी अधीरता धैर्य कैसे हो गई और उनकी अधीरता केवल अधीरता?

यदि अपनी पैरवी करना हमारा अधिकार है, तो उनकी पैरवी अपने आप उड़ता कैसे हो सकती है? इसका अर्थ उनकी हर बात को सही ठहराना नहीं है। न हर पुराना विचार संकीर्ण है और न हर नया विचार प्रगतिशील। हमारे अनुभव की अपनी कीमत है। हमने जीवन से बहुत कुछ सीखा है जो अगली पीढ़ी के काम आ सकता है। लेकिन अनुभव तब समस्या बन जाता है जब हम उसे जीवन जीने का एकमात्र सही तरीका मान लेते हैं।

संवाद एकतरफा नहीं होता—यहीं शायद दोनों पीढ़ियों के बीच सबसे जरूरी शब्द आता है—संवाद। हम चाहते हैं कि वे हमारी बात सुनें, हमारे अनुभव को समझें, हमारी चिंता पहचानें, हमारे मूल्यों का सम्मान करें। लेकिन संवाद कभी एकतरफा नहीं होता। यदि उनके हर प्रश्न को हम बहस कहकर रोक देंगे, हर नई पसंद को आजकल का चलन कहकर खारिज कर देंगे और हर अलग विचार का उत्तर तुम अभी नहीं समझोगे होगा—तो वे धीरे-धीरे हमसे अपनी बात कहना ही क्यों चाहेंगे?

यदि हम उनकी हर बात को सुनने से पहले ही खारिज कर देंगे, तो उनसे यह अपेक्षा कैसे कर सकते हैं कि वे हमारी बात समझें? संवाद का अर्थ यह नहीं कि वे जो कहें हम मान लें। और यह भी नहीं कि हमने जो कहा, उन्हें मानना ही होगा। संवाद का अर्थ है कि दोनों को अपनी बात कहने का अधिकार हो और दोनों में दूसरे की बात सुनकर अपने विचार पर पुनर्विचार करने का साहस भी हो। हम उनसे अपनी भाषा समझने की अपेक्षा करते हैं। क्या हमने उनकी भाषा सीखने की उतनी ही कोशिश की है? कुछ तुम हमारी चिड़ियों की खुशबू समझो, कुछ हम तुम्हारी यहीं शायद दूरी संवाद का सेतु बनने लगती है। संवाद की यह बात केवल भावनात्मक आग्रह बनकर न रह जाए, इसलिए इसे व्यवहार में उतारने के लिए पाँच छोटे सूत्र उपयोगी हो सकते हैं— १. पहचानें: पहले यह पहचानें कि उनका समय हमारे समय से अलग है। व्यवहार को समझने से पहले उसके संदर्भ को समझें। २. सम्मान दें: सम्मान का अर्थ सहमति नहीं होता। उनके प्रश्न, भावनाएँ, निजता और असहमति भी उतनी ही सुनने योग्य हैं जितनी हमारी चिंताएँ। ३. जुड़ें— उनसे केवल तब बात न करें जब कोई समस्या पैदा हो। उनसे तब जुड़ें जब सब ठीक है, ताकि जब सब ठीक न हो, वे हमारे पास आ सकें। ४. ठहरकर सोचें: त्वरित प्रतिक्रिया के समय में यह शायद दोनों पीढ़ियों के लिए सबसे जरूरी है। प्रतिक्रिया और निर्णय के बीच थोड़ा-सा विराम। उन्हें केवल यह न बताएँ कि क्या सोचना है; उन्हें यह सीखने में मदद करें कि कैसे सोचना है, कैसे परखना है। यही प्रश्न स्वयं से भी पूछें। ५. दिशा दें: नियंत्रण नहीं। तकनीक छीन लेना समाधान नहीं; उसके विवेकपूर्ण उपयोग की समझ देना है। प्रश्न दबाना नहीं; उन्हें खोज की दिशा देना है। उनकी ऊर्जा को रोकना नहीं; उसे अर्थपूर्ण दिशा देना है।

हमारे पास अनुभव है। उनके पास बदलते समय को देखने की नई दृष्टि। और दोनों के पास एक-दूसरे को देने के लिए कुछ है। कुछ तुम चलो, कुछ हम बढ़ें क्योंकि पीढ़ियों के बीच दूरी हमेशा उम्र की नहीं होती; कई बार दृष्टि की होती है। दृष्टि थोड़ी विस्तृत हो तो वही दूरी संवाद का सेतु बन सकती है। किसी की ओर एक उँगली उठाते समय शायद अपने हाथ को भी देख लेना चाहिए। तीन उँगलियाँ हमारी अपनी ओर मुड़ी होती हैं। वे शायद चुपचाप इतना ही पूछती हैं—जिन पैमानों पर हम नई पीढ़ी को कस रहे हैं, क्या कभी उन्हीं पैमानों पर स्वयं को भी परखा है? शायद जेन जी को समझने की शुरुआत उन्हें बदलने से नहीं, दृष्टि बदलने से होगी। उनकी ओर उठी हुई एक उँगली से नहीं—अपनी ओर मुड़ी हुई उन तीन उँगलियों से।

—ऑस्ट्रेलिया/न्यूजीलैंड

## मासिक 'निर्दलीय' के आगामी अंक

विगत दो दशकों से नियमित प्रकाशित निर्दलीय प्रकाशन की बहुरंगी अंतर्राष्ट्रीय मासिक पत्रिका 'निर्दलीय' प्रति माह विशेषांक के रूप में प्रकाशित हो रही है। नई दिल्ली स्थित सलाहकार श्री सुरेश खांडवेकर एवं श्रीमती कविता मल्होत्रा और संरक्षक सेठ रामनिवास गुप्ता एवं श्री रमेश सिंह राघव के सहयोग से मासिक पत्रिका की साज-साज्जा और सामग्री में निरंतर उत्कृष्टता एवं विकास परिलक्षित है।

इस तारतम्य में आगामी वर्ष २०२६-२७ के लिए संपादकीय मंडल ने बारह विषयों का चयन किया है। आप सभी से प्रार्थना है कि आप इन विषयों पर अपने आलेख, खड़े मीठे अनुभव, काव्य, कथा-कहानी, कविता, प्रहसन, संस्मरण अदि मासिक पत्रिका में प्रकाशनार्थ भेज सकते हैं। आपसे निवेदन है निम्नलिखित विषयों पर प्रकाशित होने जा रहे निर्दलीय

मासिक पत्रिका के विशेषांकों के लिए विषयांतर्गत सामग्री अवश्य भेजें। माहवार विषय इस प्रकार है- नवंबर- चुनाव प्रक्रिया कितनी निष्पक्ष? दिसंबर - पर्यावरण एवं जलवायु संरक्षण, जनवरी- नया साल, नया सोच, फरवरी-आनंद। मार्च- लपटों में कविता, अप्रैल - फुर्सत, मई -सैर सपाटा, जून-मुखर अभिव्यक्ति, जुलाई- निर्दलीय के अंतर्राष्ट्रीय वार्षिक सम्मान समारोह पर केंद्रित, अगस्त -लोकतंत्र और हम, सितंबर किशोर दशा और दिशा, अक्टूबर - दिमागी नक्सली कौन? नवंबर- चुनाव प्रक्रिया कितनी निष्पक्ष विषय पर रचनाएं/आलेख २० अक्टूबर २०२६ तक व्हाट्स ऐप/मेल पर मिल जाना चाहिए।

\* कैलाश आदमी, संस्थापक संपादक  
9424443401/ ८८३९७९७४४८  
मेल nirdaliyadaily@gmail.com

## निर्दलीय से जुड़ना अब आसान

निर्दलीय दैनिक / साप्ताहिक / मासिक (मुद्रित आकार) का शुल्क भेजना अब आसान हो गया है क्योंकि अब आप भारतीय स्टेट बैंक, मुख्य शाखा भोपाल के हमारे निर्दलीय के खाता क्रमांक- 30030303507 (IFSC code- sbin0001308 के अलावा हमारे मोबाइल फोन 9424443401 से जुड़े फोन पे या गूगल पे से भी शुल्क /सहयोग राशि भेज सकते हैं। दैनिक, साप्ताहिक व मासिक मुद्रित के साथ ई-पेपर भी हैं। ई-पत्रिका या पेपर हेतु शुल्क भेजना ऐच्छिक है।

मासिक निर्दलीय वार्षिक: स्पीड पोस्ट रु. 2100/-

**संरक्षक/सलाहकार पद प्रतिष्ठार्थ**

वार्षिक - 5000/- तीन वर्ष 11000/-

संरक्षक/सलाहकार- रु. 20000/-

नोट- दैनिक निर्दलीय प्रति अंक दो रु. (वार्षिक

स्पीड पोस्ट से 2100 रु), साप्ताहिक 'निर्दलीय' प्रति अंक

पांच रु. (वार्षिक शुल्क 1100 रु) स्पीड पोस्ट से 2100 रु. ।

साप्ताहिक व मासिक निर्दलीय दोनों स्पीड पोस्ट से मंगवाना है

तो कुल राशि 3200 रु. भेजें।

व्यवस्थापकीय पता - निर्दलीय प्रकाशन, एफ

116/7 शिवाजी नगर, भोपाल 462016



दैनिक निर्दलीय, साप्ताहिक निर्दलीय और मासिक निर्दलीय की वार्षिक ग्राहकी/संरक्षक/सलाहकार सहयोग राशि हेतु दूरभाष क्र. 9424443401/8839797448 पर phone pay/Google pay के जरिए जमा कर स्क्रीन प्रिंट भेजें।  
-प्रबंधक

खाताधारक का नाम- निर्दलीय  
Nirdaliya  
बैंक-भारतीय स्टेट बैंक  
शाखा- मुख्य शाखा, भोपाल  
462003  
खाता क्र. 30030303507  
आईएफएससी कोड (कूट संकेत)  
-एसबीआईएन 0001308  
(sbin 0001308)



UPI ID: nirdaliyadaily@okhdfcbank

# जे.के.स्टील फर्नीचर

भोपाल

## जीवन मारण

स्वत्वाधिकारी संपर्क-9826422823



१. पेट्रोल पंप के सामने, चूना भट्टी, कोलार मुख्य मार्ग, २. सर्वधर्म कॉलोनी सी सेक्टर पुल समीप कोलार मुख्य मार्ग, ३. बरखेड़ी कलां मुख्य मार्ग, भोपाल

# THE BEST MEDIA TO ENHANCE YOUR FOOTWEAR BUSINESS



SCAN THE QR CODE TO DOWNLOAD THE APP



**INDIA'S FIRST  
B2B FOOTWEAR APP  
THAT SOLVES EVERY  
PROBLEM FACED BY  
MANUFACTURERS  
AND WHOLESALERS.**

**Combo Offer**  
**@4000/-**  
**DFMN + FOOTBIZZ**  
**Get 1 Year Subscription**  
**SOFT COPY**  
**ALSO AVAILABLE**

**Book Your  
Advertisement Today  
& Promote Your Brand  
in India & Abroad**

**DELHI** ESTD. 1984  
**FOOTWEAR MARKET NEWS**



**DELHI FOOTWEAR MARKET NEWS**  
25, Central Market, Ashok Vihar, Phase-1, New Delhi -110052  
Ph. : 011-47028361, Mob.: 9717730178, Email: dfmn22@gmail.com

## RAM NIWAS & SONS SRD STEELS (P) LTD.



SETH RAM NIWAS GUPTA  
Chairman



SANJEEV GUPTA  
Director



RAJEEV GUPTA  
Director



DEEPAK GUPTA  
Director



SHRI KRISHAN GRIT CO.  
SKGC MINERALS LTD.

### BRANCHES

Delhi • Mumbai • Bhopal • Bhilai • Ludhiana • Faridabad • Ahmedabad  
Ghaziabad • Roorkee • Bangalore • Indore • Jaipur • Kanpur (U.P.)

### Dr. Sanjeev Gupta (The Winner of)



- Global Business Icon Award - 2018
- Asia One-Global Indian of the Year 2018-19
- India's Greatest Brands 2018-19
- ARCH of Excellence Award
- Winner of National Award in 2021

- Meri Dilli Shresth Shree Sammaan - Nov. 2020
- ISI Mark from Bureau of Indian Standard - Dec. 2020
- Meri Dilli Shresth Shree Sammaan - Aug. 2022